स्व० राजेन्द्र स्मृति ग्रन्थ-माला-१.

प्रथम संस्करण : १५००
द्वितीय संस्करण : ३०००

मूल्य दस आने
मार्च १९५०

प्रकाशक :
चन्द बड़जाते,
हायक मन्त्री
। जैन महामण्डल वर्धा (मध्यप्रदेश)

मुद्रक :
नारायणदास जाजू
मुख्य प्रबन्धक
श्रीकृष्ण प्रि. व. वर्धा

समर्पित

जिसने अपनी मृत्यु से दैहिक शुचि
दा परमात्मा प्रति साम्यभाव
को जाग्रत कर अपने पिता
को मोह मुक्त होने का
सबक दिया

अनुक्रमणिका

कर लिए जावें तो जीवन-व्यवहार में आगे जाकर ये नीति की बातें अ-
मार्ग-दर्शन करती हैं। जीवन को दृढ़, प्रामाणिक और कुशल बनाने में .
सुभाषितों का बड़ा मूल्य है।

मुख-पृष्ठ का चित्र श्री० ए० जी० नन्दनवार ने बनाया है। उनका
हमें 'आभार' मानना तो चाहिए ही, किन्तु यह 'धृष्टता' करने में हम
असमर्थ हैं।

जिन विज्ञ मित्रों, पत्रकारों और पाठकों ने अपने अमूल्य अभिप्राय
और सुझाव दिए हैं, उनके हम अत्यन्त आभारी हैं। उनके उत्साह का
ही परिणाम है कि 'प्यारे राजा बेटा' का दूसरा भाग भी १५ मार्च, ५०
तक प्रकाशित होकर पाठकों तक पहुँच सकेगा।

हमारी अभिलाषा है कि कम-से-कम मूल्य में अधिक-से-अधिक
उत्तम साहित्य दिया जाय। पहले संस्करण में इस पुस्तक का मूल्य १)
रखा गया था, किन्तु अब घटाकर दस आने कर दिया है।

आशा है पाठक हमारे प्रयत्न का यथोचित स्वागत कर उत्साह
बढ़ावेंगे ताकि कुछ नई भेंट लेकर हम उपस्थित हो सकें।

गांधीचौक, वर्धा,
२१ : २ : ५०

—सम्पादक

पत्रों में जिन महापुरुषों के चरित्रों का परिचय दिय
है, उनके चुनाव और चरित्र-चित्रण द्वारा ऋषभदासजी की ..
सर्वधर्म समभावी भावना ने अनायास ही अपना परिचय दे दिया है।
वह उत्तरोत्तर बढ़ती रहे—यही कामना है।

पत्रों की भाषा ऐसी ही है जैसी ऋषभदासजी राजेन्द्र से
बोलते रहे हैं। यही इन पत्रों का भाषा सम्बन्धी सद्गुण है।
किन्तु, क्योंकि अब तो ये पत्र दूसरे बालकों—जिन्हें ऋषभदासजी
राजेन्द्र का ही रूप मानने लगे हैं—के लिये हैं, इसलिये अच्छा
होगा कि पुस्तक के दूसरे संस्करण में भाषा को जहाँ-तहाँ थोड़ा ह
लगा दिया जाय।

बालकों के हाथों में जो साहित्य पड़े वह हर दृष्टि से सर्व
निर्दोष होना चाहिये।

आशा है बालक और सभी बाल-हितैषी अभिभावक-गण इ
पुस्तक को अपना कर ऋषभदासजी रांका को और भी बाल-हितै
साहित्य प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेंगे।

रोहित-कुटी, वर्धा
२५-७-४९.

(भदन्त) आनन्द कौसल्यायन

वाड़ी के वातावरण में उसने महात्माजी, पू० राजेन्द्र बाबू, राजाजी, वल्लभभाई पटेल आदि बहुत से राष्ट्र-सेवकों के दर्शन किए थे। ऐसे समय वह बड़े सहज भाव से रहता। इस तरह वह निस्संकोची हो गया था।

वह उदण्ड और गंदे विद्यार्थियों की संगति में नहीं रहा। उसके चाचा ने पूछा, तो कह दिया कि "मैं ऐसे लड़कों के साथ नहीं खेलूँगा जो गन्दे रहते हैं और गालियाँ बकते रहते हैं।" उसकी मित्रता अच्छे और संस्कारी बालकों से थी और उन्हें पत्र भी लिखता था।

उसके पिता ने समझा दिया था कि बाजार या हॉटेल की चीजें नहीं खानी चाहिए। एक बार ऐसा ही मौका आ गया। उसके पिता अपने दो-एक मित्रों के साथ नागपुर गये हुए थे। उससे बहुत आग्रह किया गया, किन्तु उसने हॉटेल की कोई वस्तु नहीं खाई। इसी तरह पटाखे, आदि भी वह नहीं उड़ाता था।

एक बार महारोगी सेवा मण्डल के व्यवस्थापक श्री मनोहरजी ने उसके पिता से कोढ़ के संसर्ग आदि पर कुछ चर्चा की थी। उसे यह समझ गया और मौका आनेपर एक सज्जन से उसने मोटर से उतरते ही कह दिया कि अपने बच्चों को नंगे पैर अन्दर मत ले चलिए। उसकी अवस्था-गत इस समझदारी पर सब अचरज करने लगे।

माता-पिता पर उसकी असीम भक्ति थी। उनकी आज्ञा के बिना वह कोई काम नहीं करता था। सिनेमा भी वह चाहे-जैसा

ा था। माता-पिता के पैर दबाने, मालिश करने, उन्हें
। होने देने में उसे आनन्द आता था। फिजूलखर्ची से उसे
। घर में जब कभी फिजूल-खर्ची होती तो उसे बड़ा दुख
सका आहार भी बड़ा सात्विक और संयत था।

ह गाय और बछड़ों पर बहुत प्यार करता था। एक बछड़े
न ही, उसने अपने अनुरूप 'राजा' रख दिया। मृत्यु के
ई उसने उसकी याद की थी।

जनीति की मोटी-मोटी बातें उसे मालूम थीं। वह अखबार
ता था। बापू की हत्या से उसे बड़ा दुख हुआ था।

किन ऐसे होनहार, सुशील और सुकुमार-मति बालक को,
ायु में चल देना है, यह कल्पना किसने की थी! पिता
म्मेदारी को सोच ही रहे थे और उसकी प्रगति के साधनों
ही रहे थे कि वह तो अनहोनी कर गया!

आठ—केवल आठ—दिन की अल्पकालीन बीमारी में उसने किसी
का मौका भी नहीं दिया! बीमारी में भी उसने जिस धैर्य,
ौर नियमितता का परिचय दिया, आज भी उसकी स्मृति
ही हो सकी है, न हो सकती है।

ीते-जी जिसे नहीं पहचाना जा सका, मृत्यु ने उसके
कारा को प्रकट कर दिया। शायद पिछले जन्म का वह
[illegible] होगा, जो यहीं आया, निर्विकार
[illegible] हुआ था।

जब तक वह जीया सु-पूत की तरह आज्ञापालन और करता रहा, और जाते समय अपने माता-पिता को मोह छ संसार के बच्चों को अपना समझने का संदेश दे गया।

वह १ सितम्बर '४८ को देह-मुक्त हुआ। इस तरह विश्वात्मा में व्याप्त हो गया। वह विश्व का था और विश्व उसका चिरन्तन स्थान हो सकता है। वह सीमा से सीमातीत परिवार को अपनी मृत्यु द्वारा मोह-मुक्ति का उपदेश दे गया। इस अर्थ में वह गुरु नहीं रहा ?

ऐसे बाल-गुरु को प्रेमाञ्जलि !

आशीर्वाद

[illegible]

ऋषभदासजी कोअी लेखक तो नहीं है। लेकीन पुत्र-स्नेह ने अुनको लेखन-शक्ती प्रदान की। अुनके प्यारे पुत्र तो अब चल बसे हैं। लेकीन अुसकी प्रतीमाअें, जो घर घर में मौजूद हैं, अब अीन के प्रेम-भाजन हुअी हैं। अुनके अुपयोग के लीअे यह पुसतक प्रकाशीत की जा रही है। अुममीद है अुपयुक्त साबीत होगी।

महीलाश्रम २१-७-४९ वीनोबा

ऋषभदासजी कोई लेखक तो नहीं है। लेकिन पुत्र-स्नेह ने उनको लेखन-शक्ति प्रदान की। उनके प्यारे पुत्र तो अब चल बसे हैं। लेकिन उसकी प्रतिमाएँ, जो घर घर में मौजूद हैं, अब इनके प्रेम-भाजन हुई हैं। उनके उपयोग के लिए यह पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। उम्मीद है उपयुक्त साबित होगी।

महिलाश्रम २१-७-४९ विनोबा

: १ :

भगवान महावीर

राजा बेटा,

आज मैं तुम्हें जैनधर्म के २४ वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की कहानी सुनाऊँगा। पच्चीस सौ साल पहले बिहार प्रान्त में वैशाली नगर के उपनगर कुण्डग्राम या कुन्दनपुर में राजा सिद्धार्थ के यहाँ चैत्र सुदि १३ को उनका जन्म हुआ था। हर साल जैन लोग इस दिन महावीर-जयन्ती मनाते हैं। इस वैशाली को आज-कल बसाढ़ कहते हैं। यह पटना के पास है। महावीर के पिता सिद्धार्थ गण-पति कहलाते थे। उस समय जनता का राज्य था और नगर के कुछ योग्य मुखिया मिलकर राज्य चलाते थे। ये लोग बारी-बारी से अपना मुखिया चुनते थे। इसीको गण-पति कहा जाता था। ऐसा इसलिये करते थे कि एक आदमी के हाथ में सारा या अधिकार आ जाने से प्रजा पर अत्याचार या जुल्म होने का डर रहता था। इसलिए आपस में मिल-जुलकर प्रेम से रहने के लिए उन लोगों ने यह रिवाज चलाया। कितने समझदार लोग थे वे !

महावीर के जन्म के समय सिद्धार्थ के यहाँ बहुत खुशियाँ मनाई गईं। गरीबों और दुखियों को इनाम बांटे गए। महावीर के जन्म के बाद उनके यहाँ धन-धान्य और आनन्द दिन-दूना बढ़ने लगा। इसलिए महावीर का जन्म-नाम लोगों ने वर्ध-मान रख दिया। शुक्ल-पक्ष के चाँद की तरह [illegible]

बढ़ते हैं। महावीर के गुण भी इसी तरह बढ़ने और दीखने लगे। वर्धमान जब कुछ बड़े हुए तब उनकी पढ़ाई शुरू की गई। वे बहुत थोड़े समय में होशियार हो गए। यों तो वे जन्म से ही अद्भुत गुणों से लोगों को आनन्दित करते थे।

एक बार वे कुछ बाल साथियों के साथ किसी झाड़ के पास खेल रहे थे। इतने में उस झाड़ पर एक बड़ा भारी साँप दीख पड़ा। उसकी फुफकार भी बहुत जहरीली थी। उसे देखकर और सभी साथी तो भाग गये, लेकिन वर्धमान ने उसे पकड़कर दूर फेंक दिया। वे उससे बिलकुल नहीं डरे। बस, तभी से लोग उन्हें महावीर कहने लगे। महावीर बचपन से ही बहुत समझदार, निडर और माता-पिता के आज्ञाकारी पुत्र थे।

एक बार कुछ लोग जानवरों को पीटते हुए ले जा रहे थे। जानवरों की 'में-में' की चीत्कार सुनकर महावीर से नहीं रहा गया। उन्होंने उन लोगों से पूछा:

"भाई, ये जानवर कहाँ ले जा रहे हो? इन्हें इस तरह बाँधकर खींचते और पीटते हुए क्यों ले जा रहे हो?" इस पर उन लोगों ने कहा:

"कुमार, हम इन्हें यज्ञ के लिए ले जा रहे हैं। ये यज्ञ के बलि हैं।"

कुमार ने पूछा, "यज्ञ के बलि क्या होते हैं?"

उन लोगों ने कहा, "इन्हें यज्ञ में मारा जायगा।"

कुमार "क्यों? यज्ञ क्यों करते हो?"

लोग : "देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ किया जाता
। इससे यज्ञ करनेवाले को स्वर्ग मिलता है और पशुओं का
ार होता है—वे ऊँची योनि पाते हैं। यह धर्म है।"

सुनकर कुमार महावीर विचार में पड़ गए कि यह कितना
पाप है। क्या देवता दूसरों को मारने से प्रसन्न होते हैं!
ा, यह नहीं हो सकता। संसार का हरएक जीव सुख चाहता
किसी को भी दुख पसन्द नहीं है। जैसा जीव इन लोगों में,
में और देवताओं में है, वैसा ही जीव इन जानवरों में भी है।
रे को तकलीफ देना और मारना धर्म नहीं हो सकता। यह तो
र्म है, पाप है और स्वार्थ है!

अब महावीर हमेशा एकान्त में बैठकर जीवों के सुख के बारे
सोचा करते। उन्हें इस बात से भी बड़ा दुःख हुआ कि धर्म
नाम पर मनुष्यों में ऊँच-नीच के भेद डालकर कुछ लोगों को
द्र यानी चाण्डाल आदि घोषित कर दिया गया और उनको छूना
क मना कर दिया था। क्योंकि वे बेचारे समाज के हल्के काम
क्या करते थे। तुम्हीं बताओ, जो आदमी पाखाना और गंदगी
ठाकर समाज में सफाई फैलाता है, उसका उपकार मानना चाहिए
ा उपकार? लेकिन यह सब तो दूर रहा, उन्हें चाण्डाल कहकर
[illegible] वे बाहर रखा जाता था। यदि कोई आदमी किसी चाण्डाल
[illegible] तो उसे स्नान करके प्रायश्चित करना पड़ता था और
[illegible] था। यहाँ तक कि बेचारे को
[illegible] मना कर दिया गया था [illegible]

कोई ऐसा करता तो उसकी खूब मरम्मत होती थी। यह
देखकर महावीर विचार-मग्न रहने लगे। वे किसी से पूछते तो उ
मिलता कि यह तो धर्म है। धर्म में किसी को कुछ कहने-क
का क्या अधिकार है!

यही हाल स्त्रियों का था। समाज में स्त्रियों को भी हे
समझा जाता था। महावीर अपनी माँ पर बहुत प्यार करते थे
उन्होंने देखा कि जैसे मुझे अपनी माँ प्यारी है, वैसे ही सब
अपनी माताएँ प्रिय हैं। फिर माँ की जाति का इतना अपमान क्यों

इन सब बातों पर गहराई से सोचने पर महावीर को ऐ
लगा कि ये लोग धर्म के नाम पर अधर्म फैलाते हैं। यह सब मि
दृष्टि है। उन्होंने निश्चय किया कि धर्म के सच्चे स्वरूप
समझकर लोगों को सन्मार्ग पर लाना चाहिये। लेकिन यह काम
घर रहकर होना कठिन था। इसके लिए तो संयम और साधना
आवश्यक थी। घर में अनेक तरह की सुख की वस्तुएँ थीं, लेकि
महावीर ने उनमें मन नहीं लिया।

महावीर की वैराग्य वृत्ति को देखकर उनके माता-पिता चि
हो गए। पूछने पर महावीर ने कहा कि "मात, [illegible]
दुःख, अन्याय, [illegible] और हिंसा आदि को देखकर मेरा मन [illegible]
[illegible] रहा है। [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

दीपावली का त्यौहार आनन्ददायी है। यह सबको सुखी होने की शिक्षा देता है। आज अपने देश में यह त्यौहार मनाया जाता है, परन्तु असली उद्देश्य दूर हो गया है। बहुत से लोग पटाखे उड़ाते हैं। इससे देश की बहुत हानि होती है। कभी कभी तो यह सुख दुख भी हो जाता है। यह त्यौहार तो बड़ों के जीवन से कुछ सीखने के लिए है। ऐसा नहीं होना चाहिए कि पटाखे आदि में अपने धन, समय और जीवन का नाश करें। दूसरों का उपकार करने में, उनकी सेवा करने में सुख मानना चाहिए। जैसा सुख महावीर स्वामी को मिला, वैसा ही हम भी प्राप्त कर सकते हैं। बड़े होने पर तुम जानोगे कि दीपावली के त्यौहार कितनी बड़ी बात है और उसे कैसे और क्यों मनाना चाहिए।

—रिषभदास के प्यार

तेरा साँई तुझ में, ज्यों पुहुपन में बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर-फिर ढूंढे घास॥
जा कारन जग ढूँढिया, सो तो घट ही माहिं।
परदा दीया भरम का, तातें सूझै नाहिं॥
[illegible]
[illegible]

कबीरदास

गौतम आदि कहते हैं। बुद्धदेव का जन्म उपवन यानी बगीचे में हुआ। बात यह हुई कि मायावती को गर्भ-अवस्था में घूमने की इच्छा हुई। उसे दास-दासियों सहित पालकी में बिठाकर आम्रवन (आम के बगीचे) में ले गए। वहाँ उनके पेट में दर्द हुआ। तब दासियों ने चारों तरफ पर्दे आदि लगा दिए और वहीं इनका जन्म हुआ। गौतम बुद्ध के जन्म के सात दिन बाद उनकी माँ मायादेवी का देहान्त हो गया। अब इस बालक का लालन-पालन उसकी मौसी या सौतेली माँ महाप्रजापति ने किया। इनका जन्म नाम सिद्धार्थ रखा गया। आगे चलकर जब सिद्धार्थ ने ज्ञान प्राप्त किया और संसार को दुख से छूटने का मार्ग बताया तब वे शाक्य, गौतम, तथागत, बुद्धदेव आदि नामों से पुकारे जाने लगे।

सिद्धार्थ का लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार से हुआ। उनकी शिक्षा आदि का भी बहुत अच्छा प्रबंध किया गया और वे योग्य बन गए। उनका बचपन बहुत मज़े में और सुख-पूर्वक व्यतीत हुआ।

बड़े होने पर सिद्धार्थ का विवाह यशोधरा नामक एक गुणवान् और सुंदर कन्या से हुआ। राजा ने इनके रहने के लिए तीन सुन्दर महल बनवाए। ये मकान गर्मी, सर्दी और वर्षा के लिए थे। यानी एक मकान ऐसा था, जिसमें गर्मी के दिनों में भी ठण्डक रहती, दूसरे में सर्दी के दिनों में भी गर्मी और तीसरे में बरसात में नमी यानी सीलन और जीव-जन्तु का डर नहीं रहता। आज्ञाकारी दास-दासियाँ थीं, आराम के पूरे सामान थे, सुशील और सुन्दर पत्नी थी, लेकिन सिद्धार्थ अक्सर कुछ चिन्ता करते ही दिखाई देते।

उसे गोद में प्यार किया गया। राजा शुद्धोदन ने भाग्य देखने-वालों से पूछा कि सिद्धार्थ में गुण क्या हैं? उन्होंने कहा, "राजन्, [illegible] बड़ा [illegible] है।" इस पर से शुद्धोदन ने उस बालक का नाम गौतम रख दिया।

सिद्धार्थ को पुत्र होने से प्रसन्नता नहीं हुई। वे तो घर छोड़ने का ही विचार करने लगे।

एक दिन आधी रात को वे यशोधरा के कमरे में गए। वहाँ राहुल के निर्दोष और प्यारे चेहरे को देखकर क्षण-भर के लिए मोह में पड़ गए, लेकिन फिर दृढ़ निश्चय करके, सारथी को साथ ले जंगल की ओर चले गए। अपने सारे गहने और कपड़े उतार कर सारथी को दे दिए, [illegible] से कपड़े पहनकर वे अब संसार का दुख दूर करने निकल पड़े

सिद्धार्थ ने वर्षों तक तपस्या कर के दुख से छूटने के मार्ग की खोज की। अन्त में उन्हें सफलता मिली। ज्ञान प्राप्त हुआ। वे बुद्ध कहलाने लगे। लोगों को उन्होंने अपने-ज्ञान से रास्ता बताया, लोगों ने उसे अपनाया और उनका दुख दूर होने लगा।

बेटे, तुमने अजन्ता की गुफाओं में बुद्धदेव की ध्यान-मग्न मूर्ति देखी है न! कितना शान्त चेहरा है! इसीसे तो उन्हें अब तक याद किया जाता है। जो अपना कल्याण करते हैं और लोगों को कल्याण के रास्ते पर लगाते हैं उन्हें ही 'भगवान' कहते हैं। संसार उन्हें कैसे भूल सकता है!

में बहुत बदनाम थे, लेकिन इनमें बहुत बड़े व्यापारी, विद्वान और शास्त्रज्ञ भी हैं। यह जाति बहुत पुरानी है। लेकिन आज तक उनका अपना कोई देश भी नहीं था। अभी अभी उन्होंने इज़राइल नामक देश अरबों से लेकर बना लिया। इनमें और अरबों में जन्म-भूमि के लिए झगड़े चल ही रहे हैं। यहूदी संसार में चारों ओर फैले हुए हैं। जर्मनी का हिटलर यहूदियों का जानी दुश्मन था। उसने चुन-चुन कर जर्मनी से यहूदियों को खत्म करने का प्रयत्न किया था। इसी यहूदी जाति में ईसा का जन्म हुआ था।

ईसा का जन्म मेरिया नामक कुमारी से हुआ था। ईसाई लोग मानते हैं कि ईसा पवित्र कुमारी के पेट से दैवी-शक्ति के रूप में पैदा हुए थे। मेरिया गेलिली तहसील के नाजरेथ गाँव में रहती थी। इसकी सगाई युसुफ नामक बढ़ई के साथ तय हो गई थी। युसुफ बेथलहम में रहता था, इसलिए मेरिया भी वहीं चली गई। वहीं पर ता० २४ दिसम्बर की आधी रात को ईसा का जन्म हुआ। इस कारण ता० २५ दिसम्बर को जो त्यौहार मनाया जाता है, उसे ईसाई लोग नाताळ कहते हैं।

ईसा की पढ़ाई धार्मिक पाठशाला में हुई। इन पाठशालाओं को वहाँ सिनेगॉग कहते हैं। यहाँ कहानियों द्वारा धर्म की पढ़ाई होती थी। कहानियों द्वारा पढ़ाई करना अच्छी बात है। ईसा जब १२ साल के हुए, तब उनके माता-पिता उन्हें येरुसलम की यात्रा में साथ ले गए। वहाँ मंदिर के पास बहुत बड़ी पाठशाला थी। उसमें धर्म-शास्त्र की पढ़ाई होती थी। वहाँ दूर-दूर के बालक रहकर पढ़ते थे। ईसा को बचपन से ही कुछ पढ़ने-सीखने की

पड़ा। उन्होंने लोगों से यह भी कहा कि इस मंदिर को तोड़ फोड़ डालो, तीन दिन में मैं दूसरा मंदिर खड़ा कर दूँगा। इसका मतलब यह था कि बाहरी क्रियाकांड का कोई महत्त्व नहीं है, मन की पवित्रता ही सच्ची भक्ति है, मन ही सच्चा मन्दिर है। लेकिन यह सच्ची बात यहाँ के लुटेरे और स्वार्थी पुजारियों तथा अन्य व्यापारियों को बुरी लगी। क्योंकि ऐसा होने से उनकी कमाई बंद होती थी। इसलिए ये लोग ईसा के खिलाफ हो गए।

लेकिन ईसा को तो अपना काम करना था। अपने दीक्षा गुरु महात्मा यौहान की तरह ये गरीबों, दुखियों, पापियों, अज्ञानियों में सच्चे धर्म का प्रचार करने लगे। उनका कहना था कि जाति फिजूल है, धर्म पालन और धारण का सबको अधिकार है, अपनी बुराइयों और दूसरे के गुणों को देखना चाहिए। वे कहानियों और दृष्टान्तों द्वारा धर्म का उपदेश देते थे। क्योंकि बे-पढ़े-लिखे लोग ऊँची भाषा नहीं समझ सकते।

वे पापियों और अधार्मिकों को धर्म पर कैसे लगाते थे? इस सम्बन्ध में तुम्हें एक घटना बताता हूँ :

एक महिला से कोई अपराध हो गया था। उस समय यह रिवाज था कि अपराध करने वाली स्त्री को चारों तरफ से घेर कर उस पर हजारों पत्थर बरसाकर उसे मार डाला जाता था। वह स्त्री दौड़ते-दौड़ते ईसा के चरणों में आ गई। ईसा बिलकुल चुप रहे। इतने में भीड़

कोई अपराध नहीं दीखा। लेकिन लोगों के आग्रह से कोड़े की सजा सुना दी। लोगों को इससे भी सन्तोष नहीं; कहा-इसे क्रूस (सूली) पर लटकाया जाय।

जिसे मौत की सजा मिलती थी उसे क्रूस पर लटकाते थे। आजकल तो मौत की सजा बड़ी सरल हो गई है। जानते हो क्रूस कैसा होता है?

एक खम्भे पर आड़ी लकड़ी जोड़ दी जाती है। खम्भे पर आदमी को खड़ा करके आड़ी लकड़ी पर दोनों हाथ फैला देते हैं। फिर हाथ-पैरों और छाती में मजबूत कीले ठोंक देते हैं। अब तुम सोचो कि कितनी तकलीफ की बात है यह! ईसा को भी इसी तरह क्रूस पर लटका दिया गया। पुजारियों और पण्डितों ने लोगों में ऐसा डर पैदा कर दिया कि ईसा के प्रेमी भी उनसे नहीं मिल सके। यह अचरज की बात है कि ईसा को पकड़ाने में उनके एक शिष्य का हाथ था।

क्रूस पर लटकते समय उनकी माँ, मौसी और छोटे शिष्य जॉन उपस्थित थे। उन्हें बड़ी वेदना हुई। ईसा का गला प्यास से सूखने लगा। आखिर उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि "इस काम को करने वाले समझते नहीं हैं कि वे क्या कर रहे हैं, तू उनपर दया कर, उन्हें सुबुद्धि दे।"

इस तरह संसार का एक महापुरुष चला गया।

वे प्रेम के अवतार थे। उन्होंने कहा था कि "जो तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे, उसके आगे दूसरा भी गाल कर दो।"

: ४ :

कनफ्यूशियस

प्यारे राजा बेटा,

पचीस-सौ साल पहले दुनिया के कई देशों में महा-पुरु हो गए हैं। भगवान महावीर, बुद्धदेव आदि के बारे में तुम जा चुके हो। कनफ्यूशियस भी एक ऐसा ही महा-पुरुष था। यह चै में हुआ था। इसका चीनी नाम 'कुंग-फु-त्जे' था।

हिन्दुस्तान की तरह चीन भी प्राचीन और सभ्य देश र है। दुनिया में सब से ज्यादा लोग चीन और हिन्दुस्तान में र हैं। चीन की आबादी चालीस करोड़ के ऊपर है। इन दोनों दे का सम्बन्ध बहुत पुराना है। इनके धार्मिक, बौद्धिक और राजनैति सम्बन्ध का इतिहास बड़ा रोचक है। चीन के जो यात्री यहाँ आए थे, उन्होंने अपनी यात्रा के वर्णन में हिंदुस्तान का अच्छा विवरण दिया है। ह्वेनसाग नामक यात्री सम्राट हर्षवर्धन के समय यहाँ आया था।

चीनी लोग ज्ञान और कौशल के बड़े खोजी रहे हैं। कागज बनाना, छापखाना तैयार करना, बन्दूक और बारूद बनाना आदि काम चीन में ही शुरू हुए। सचमुच चीन के लोग बड़े परिश्रमी और बुद्धिमान रहे हैं।

उसने दी। वह व्यावहारिक था। वह इसी संसार को स्वर्ग
चाहता था। ला-ओ-त्से का कहना था कि पर-लोक सुधारने के
अच्छा काम करना चाहिये। दोनों के विचारों में यह अन्तर
कनफ्यूशियस परलोक में विश्वास नहीं करता था और ला-
परलोक मानता था। यह तो धर्म की बात है। लेकिन घरेलू
समाज, राजनीति आदि में कनफ्यूशियस के विचार ही ज्यादा प्र
थे। कुछ भी हो, दोनों के विचार लोगों को सुखी बनानेवाले

कनफ्यूशियस का जन्म चीन के शाटुंग प्रान्त में टूना
राज्य में हुआ था। उसके पिता जिले के किलेदार थे। उनक
इज्जत थी। उनके कोई पुत्र नहीं हुआ, सब लड़कियाँ ही हुईं,
७० वर्ष की उम्र में उन्होंने दूसरा विवाह किया। इससे
कनफ्यूशियस का जन्म हुआ। कनफ्यूशियस की तीन साल
उम्र में उनका देहान्त हो गया। इससे कनफ्यूशियस को ब
तकलीफें उठानी पड़ीं। दुःखों और संकटों का सामना करने
बढ़ने वाले ही महान् होते हैं।

कनफ्यूशियस को पढ़ने की प्रबल इच्छा थी। बड़े परि
से उसने पढ़ाई की। उसके पढ़ने की एक बहुत बड़ी विशेषता
वह जो पढ़ता, उसका पालन करता। ऐसी ही एक बात म
यहाँ महाभारत ग्रंथ में आई है। युधिष्ठिर का नाम सुना है
तुमने! वे अपने गुरु से जो पढ़ते उसको जन्म-भर निभा
एक बार उन्होंने 'सत्य' का पाठ पढ़ा। दूसरे दिन सब विद्या

एक बार किसी मित्र ने उनसे कहा कि "आप इतना शोर-गुल कैसे सहन करते हैं?"

इस पर सुकरात ने सरलता से कहा, "क्या आप बत्तख और मुर्गियों की आवाज सहन नहीं करते?"

मित्र ने कहा : "मुर्गी और बत्तख तो अंडे देते हैं।

इस पर सुकरात ने कहा : "तो, मेरी पत्नी भी बच्चे देती है।"

झेंथापि इतनी दुष्ट थी कि सुकरात के कपड़े तक फाड़ डालती थी। लेकिन वह तो यही कहता था कि सिखाने वाले के हाथ में [illegible]

इन लोगों से कहा : "आप लोग शान्त रहें। मौत से कोई नहीं बच सकता। यह तो बड़ी अच्छी बात है कि सचाई के लिए मैं मर रहा हूँ। मैं बहुत प्रसन्न और शान्त हूँ। आप घबरायेंगे और रोयेंगे तो मैं शांत कैसे रह सकूँगा!" इस तरह लोगों को समझा कर उन्होंने जहर का प्याला पी लिया। जब तब शरीर में शक्ति और सुधि रही टहलते रहे और उपदेश देते रहे। ज्यादा असर फैलने पर वह लेट गये और थोड़ी देर में उनका देहान्त हो गया।

बेटा, इस तरह यूनान के लोगों ने एक महा-पुरुष को मार डाला। लेकिन क्या सुकरात मर गया है? नहीं, उनकी आत्मा अभी भी संसार के लोगों को सचाई और निडरता का प्रकाश देती है। जो महान् होते हैं, उनके शरीर का नाश भले ही कर दिया जाय, लेकिन उनकी महानता नष्ट नहीं की जा सकती।

लोग अपने देश के बड़े आदमी को जीते-जी नहीं पहचानते। जब तक वह जीवित रहता है, तब तक लोग उसे अपना शत्रु समझते हैं। ईसा मसीह की भी यही हालत रही। ऐसा हमेशा से होता रहा है। मरने पर ही उसकी पूजा की जाती है।

बड़े होने पर सुकरात के बारे में और [illegible] बातें जानने की कोशिश करना।

—रिषभदास के प्यार।

एक दिन नारदजी घूमते-घूमते इन्द्र के दरबार में पहुँचे। इन्द्र ने पूछा, "महाराज, दुनिया के क्या हालचाल हैं?" उस ज़माने में अखबार नहीं थे। चारों तरफ घूमनेवाले नारदजी ही इधर-उधर की खबरें सुनाते थे। नारदजी ने कहा, "भारतवर्ष में शिवि नामक एक राजा है। वह न्यायी और परोपकारी है। हमेशा प्रजा की भलाई चाहता है। इसके लिये वह प्राणों की भी पर्वाह नहीं करता।"

इन्द्र देवों का राजा था। उसे एक मनुष्य की—शिवि राजा की—बड़ाई कैसे सुहाती! इन्द्र ने कहा, "संसार में फँसे हुए मनुष्यों की प्यारी चीज प्राण है। जबतक प्राणों का मौका नहीं आता, तबतक ही ये बातें हैं। मनुष्य अपने लिये तो चाहे जो पाप करने लग जाते हैं फिर दूसरों के लिये प्राण देना तो दूर की बात है।"

नारदजी ने जवाब दिया, "किन्तु शिवि राजा ऐसा नहीं है। वह मनुष्य तो क्या, किसी भी प्राणी के लिये प्राण दे सकता है।"

इन्द्र को अचरज हुआ। वह इसका विश्वास न कर सका। राजा की परीक्षा लेने का विचार कर वह [illegible] गया। [illegible]

हो तुम और तुम्हारी न्याय-परायणता। यह सब मैंने तुम्हारी परीक्षा के लिए किया था।" और इन्द्र अपने स्थान पर चला गया।

ऐसी ही एक कथा राजा मेघरथ की जैन-ग्रंथों में है। ऐसे ही परोपकार के कारण राजा मेघरथ ने तीर्थंकर नाम-कर्म का बंध किया था। यही आगे चलकर १६ वें शांतिनाथ तीर्थंकर हुए। तीर्थंकर यानी वह महान् पुरुष जो अपना और दूसरों का कल्याण करते हैं, कल्याण का मार्ग बता जाते हैं।

बेटा, जहाँ ऐसे न्यायी राजा हों, वहाँ के लोग भी सुखी रहते हैं। अब तुम्हारे ध्यान में आ गया होगा कि भारत को पुण्य-भूमि क्यों कहते हैं। अपने देश में लोगों की भलाई के लिए प्राण देनेवाले लोग हर जमाने में रहे हैं और आज भी देखो न, हमारे बापू—गांधीजी देश को सुखी बनाने के लिए जेल की तकलीफें उठा रहे हैं *। उनकी तपस्या जरूर अपने देश को आजाद करेगी और फिर संसार गांधीजी की कहानियाँ कहेगा।

—रिषभदास के प्यार।

दया धरम का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छाडिये, जब लग घट में प्रान॥

---

* पू० गांधीजी का स्वर्गवास ता० ३० जनवरी सन् १९४८ को दी में शाम के ५॥ बजे हुआ।

ही चलते हैं और उनका खाना भी विशेष प्रकार का होता है। अतः उनके लिए 'आहार-विहार' शब्द खास रूप से कहे जाते हैं। इस तरह साधुओं या मुनियों के विहार वाले प्रदेश को बिहार कहना भी सम्भव है। जो भी हो, 'बिहार' शब्द के साथ बौद्ध और जैन साधुओं का सम्बन्ध अवश्य रहा है।

इसी बिहार में जैनधर्म के तीर्थंकर महावीर स्वामी और बौद्धधर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध हुए हैं। ये दोनों राज-पुत्र थे और क्षत्रिय थे। इन्होंने दुनिया की भलाई के लिए राज-पाट छोड़कर तपस्या की और बहुत तकलीफें सहन कीं। अन्त में इन्हें भलाई का रास्ता मिला और उपदेश देकर लाखों लोगों को भलाई के रास्ते पर लगाया। ऐसे महान् पुरुषों की यह जन्मभूमि रही है। सचमुच बिहार पुण्यभूमि है।

बिहार में बड़े-बड़े राजा हुए हैं। महावीर स्वामी और गौतम-बुद्ध के समय वहाँ पर दो तरह के राज्य थे। एक तो लोक-राज्य था यानी लोग मिलकर, अपने में से अच्छे लोगों का चुनाव कर के राज्य चलाते थे, दूसरे गण-राज्य थे यानी जैसे मालगुजार आदि होते हैं, जो कुछ हिस्से के मालिक होते हैं। धीरे-धीरे लोगों का राज्य मिटता गया और राजाओं का जोर बढ़ता गया। इससे वहाँ के राजा शक्ति-शाली बनने गए। अशोक का दादा चन्द्रगुप्त महान् सम्राट था। उसके अधीन कई राजा थे। उसका राज्य बहुत दूर दूर तक फैला हुआ था। चन्द्रगुप्त ने एक बहुत बड़ा काम देश के लिए किया। देश के कुछ हिस्से को यूनानवालों ने जीतकर वहाँ अपना

तब से उसने लड़ना छोड़कर गांधीजी की तरह अहिंसा का प्रचार करना अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया। अपने राज्य के अनेक स्थानों पर, खंभों पर या पत्थरों पर नीति और धर्म की बातें खुदवाईं। वे खंभे और बातें आज भी देखने को मिलती हैं। उसने लिखवाया "किसी भी प्राणी को मत सताओ, झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, संयम से रहो; दीन दुखियों पर दया करो आदि।"

साधुओं के रहने के लिए उसने बड़े-बड़े विहार बनवाए। उनके रहने, खाने-पीने तथा पढ़ने-लिखने का इन्तज़ाम किया। उसने साधुओं को दूर-दूर के देशों में भेजकर धर्म का प्रचार करवाया। उसके लड़के और लड़की ने भी बौद्धधर्म की दीक्षा लेकर सीलोन (लंका) में धर्म का प्रचार किया। उसके समान खुले दिल से और सच्ची लगन से धर्म का प्रचार किसी भी राजा ने नहीं किया। इसीलिए अशोक की कीर्ति चारों तरफ़ फैली और इतिहास में उसका नाम अमर हो गया।

बिहार में ऐसे बहुत बड़े-बड़े लोग होते रहे हैं। देश-रत्न बाबू राजेन्द्रप्रसादजी भी बिहार के ही हैं। राजेन्द्रबाबू को तुम पहचानते हो न! अपने पड़ौस के गेस्ट हाउस में वे ठहरा करते थे। और जब वे बगीचे में बैठे होते तब तुम वहाँ जाया करते और वे कहते थे– "आओ, हमारे नाम राशि आओ!" कितने अच्छे हैं हमारे ये नेता! कितनी सादगी और प्रेम है उनमें!!

धन्य है अपना यह देश जिसमें चन्द्रगुप्त और अशोक जैसे पराक्रमी राजा हुए। महावीर और बुद्ध जैसे धर्मसम्राट उत्पन्न

अपने अज्ञातवास के समय में कुमारपाल साधु का वेश धारण कर अनेक देशों-प्रान्तों में घूमता रहा। किसी को भी अपना पता नहीं लगने दिया। इस घूमने से उसे कई नए अनुभव हुए। अलग-अलग प्रान्तों के रीति-रिवाज, भाषा, संस्कार, पहनाव, रहन-सहन आदि का परिचय मिला। इससे कुमारपाल का ज्ञान काफ़ी गहरा और सूक्ष्म हो गया। गरीबों और अज्ञानियों की दशा का उसे बड़ा गहरा अनुभव हुआ।

महाराज जयसिंह की मृत्यु होने के पश्चात् कुमारपाल राजधानी में लौटा। उस समय गुजरात की राजधानी अणहिल्लपुर थी। इस शहर की शोभा अद्वितीय थी। जब उसने राज्य में प्रवेश कर राज्य की बागडोर सम्हाली तब उसकी उम्र ५० वर्ष की थी। १५ वर्ष तक तो वह अपने शत्रुओं से लड़ता रहा। उसका सबसे बड़ा शत्रु अजमेर यानी सपादलक्ष का राजा था। वह भी पराक्रमी था। इसीने अजमेर में 'आना सागर' तालाब बनवाया है। अन्त में कुमारपाल ने उसे हरा दिया। अब कुमारपाल शत्रुओं से मुक्त हो गया, सब इसके अधीन हो गए। अब वह अपनी [illegible] व्यवस्था की सुन्दर नींव [illegible] दिन [illegible] करने में [illegible]

[illegible] कि [illegible] है। इस [illegible] महुवाओं [illegible]

कुमारपाल—"क्यों, क्या हुआ बहन ? कहो तो !"

स्त्री—"हमारे यहाँ बहुत बड़ा व्यापार होता था। मेरे पति और पुत्र हमेशा जहाज पर विदेशों से व्यापार करते थे। मेरे दुर्भाग्य से जहाज डूब गया और उसमें मेरे पति और पुत्र दोनों मर गए। अब कल सुबह ही मेरी सम्पत्ति राज्य-नियम के मुताबिक जब्त कर ली जायगी।"

सुनकर कुमारपाल का मन पिघल गया। इस बहन का दुख उससे देखा नहीं गया। उसने उस स्त्री से कहा —

"नहीं, बहन ऐसा नहीं होगा।"

स्त्री ने कहा—"तुम्हारे कहने से मेरा दुख थोड़े ही टलने वाला है। यह तो राज्य-नियम है।"

कुमारपाल आखिर किसी तरह उसे धीरज बंधा कर लौट गया।

सुबह होते ही उसने मंत्रियों की एक सभा बुलवाई और आदेश किया कि निर्वंश स्त्री की सम्पत्ति राज्य-कोष में जमा करने के नियम को रद्द कर दिया जाय।

इस पर मंत्रियों ने कहा कि इससे तो राज्य की बहुत बड़ी आमदनी कम हो जायगी। इस नियम से प्रति-वर्ष लाखों की आमदनी होती है।

कुमारपाल ने कहा [illegible] आय हो या न हो, प्रजा को दुखी करके [illegible] की कोई मदद नहीं है। प्रजा के सुख में ही हमारा सुख है। यह [illegible] ही होगी।" इस तरह

ने कहा कि "देवी यदि बलि भक्षक होती तो इतने बकरों में एक को तो खा जाती। इससे आप देखते हैं, कि देवी बलि नहीं चाहती। मांस खानेवाले ही यह चाहते हैं। जब वह स्वयं नहीं खाती, तब उसके आगे मारने से क्या फायदा।"

इस युक्ति के सामने पुजारी-गण चुप हो गए। फिर देवी के आगे बलि चढ़ाना बंद हो गया।

कुमारपाल की योग में बड़ी रुचि थी। हेमचन्द्राचार्य से प्रार्थना करके उसने गृहस्थों के उपयुक्त 'योग' पर एक अच्छा ग्रंथ लिखवाया। 'योग-शास्त्र' हेमचन्द्राचार्य का बड़ा सुन्दर ग्रंथ है। पहले लोग समझते थे कि योग की साधना और अभ्यास तो साधु ही करते हैं। इस ग्रंथ के अनुसार गृहस्थ योग-साध सकते हैं।

तुमने पहले की कुछ कहानियों में पढ़ा होगा कि महापुरुषों की मृत्यु उनके सम्बंधी लोगों के कारण हुई। कुमारपाल की हत्या भी उनके भतीजे अजयपाल ने विष देकर कर डाली।

महापुरुषों की कीर्ति उनकी मौत से ही अमर होती है। सचमुच कुमारपाल एक महान प्रजा-हितैषी सम्राट थे।

—रिषभदास के प्यार।

यों तो सिसोदिया कुल में कई वीर राणा और सैनिक हो गए हैं, किन्तु उन सब में महाराणा प्रतापसिंह का स्थान बहुत ऊँचा है। ज्यादा कष्ट इन्हीं को झेलने पड़े। अनेक असह्य कष्टों और सक्टों को सहकर भी महाराणा प्रताप ने अपनी टेक नहीं छोड़ी। इसीसे वे इतिहास में अमर हो गए।

उस समय दिल्ली के राज्य-तख्त पर बादशाह अकबर थे। चारों तरफ उनकी धाक थी। अकबर बड़े बुद्धिमान और चतुर थे। हिन्दुओं को खुश रखने के लिए जहाँ उन्होंने धार्मिक उदारता दिखाई, राज्य में हिन्दुओं को बड़े-बड़े पद दिए, गौ-हत्या बन्द कराई, वहाँ अनेक हिन्दू राजाओं को अपने अधीन करके उनकी लड़कियों से विवाह भी किए। सबको आदर दिया, लेकिन उन्हें अधीन भी किया। अकबर ने देखा कि और तो सब राजा-महाराजा मेरे अधीन हो गए हैं लेकिन मेवाड़ के राणा प्रतापसिंह अपनी टेक से जरा भी नहीं हटते। यों अकबर बार-बार प्रतापसिंह की वीरता और साहस की प्रशंसा करता था, लेकिन मनमें खटकता तो था ही।

आखिर अकबर ने अपने [illegible] तथा राजा मानसिंह [illegible] चढ़ाई कर दी। [illegible] बड़ी बहादुरी [illegible] [illegible]

छत्र-छाया में एकत्रित होने लगे। मेवाड़ के सुदिन लौट चले। एक के बाद एक किला जीता जाने लगा।

बेटा, संसार में धनवान तो बहुत होते हैं और खुद पर संकट पड़ने पर खर्च भी खूब करते हैं। लेकिन भामाशाह जैसे उदार देश-भक्त बिरले ही होते हैं। आदमी धन को अपने जीवन से भी ज्यादा प्यारा समझता है। इसलिए संसार में वही बड़ा माना जाता है जो धन को सदुपयोग में लाकर जीवन को महत्व-पूर्ण समझता है।

अपने जमनालालजी बजाज (काकाजी) भी आधुनिक भामाशाह कहे जाते थे। इन्होंने देश-सेवा में और आज़ादी पाने के लिए अपना बहुत धन खर्च किया। आज वर्धा में जो इतने बड़े-बड़े विद्वान और महात्मा हैं, यह सब काकाजी की देश-भक्ति का कारण है। वे आज हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनकी कीर्ति सदा रहेगी।

बेटा, खूब कमाओ और खर्च करो; लेकिन समय आने पर समाज और देश के हित के लिए अपने धन का त्याग कर दो। यही धन की सार्थकता है। मैं तुमसे ऐसी ही उम्मीद करता हूँ।

—रिषभदास के प्यार।

: १० :

दो दोस्त

प्यारे राजा बेटा,

यह कहानी दो हजार वर्ष पहले की कहानी है। इससे तुम समझ सकोगे कि दो दोस्तों को आपस में किस तरह रहना चाहिए। अनेक आदमी थोड़े दिन तक मित्र होते हैं, लेकिन अन्त तक उनकी मित्रता टिकती नहीं। ऐसा नहीं होना चाहिए। जिस को एक बार दोस्त या मित्र मान लिया, उसके साथ कभी भी दुश्मनी या बुराई पैदा नहीं होनी चाहिए।

गुनचन्द और शुभचन्द दो मित्र थे। गुनचन्द राजगृही का रहने वाला था और शुभचन्द वाराणसी (बनारस) का। दोनों एक साथ नालन्दा विश्वविद्यालय में पढ़ते थे। दो हजार वर्ष पहले इस देश में नालन्दा और तक्ष-शिला के विश्व-विद्यालय दुनिया-भर में प्रसिद्ध थे। नालन्दा बिहार में था और तक्ष-शिला पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में। यह सीमा प्रान्त पंजाब के ऊपर है। यह ध्यान देने की बात है कि भारतवर्ष के ये दोनों प्रसिद्ध विद्यालय देश के दो सिरों पर थे। दोनों नगर में दूसरे देशों के सैकड़ों विद्यार्थी यहाँ आते थे। नालन्दा में तिब्बत, चीन, जापान आदि से और तक्ष-शिला में अफगानिस्तान, अरब [illegible] विद्यार्थियों का आना जाना होता था।

• दो हजार साल पहले की कल्पना करो। उस समय आने-जाने के रेल, मोटर, जहाज आदि साधन नहीं थे। पत्र-व्यवहार के लिए डाकखाने और डाकिये नहीं थे। छापखाने नहीं थे। इससे सुन्दर-सुन्दर तथा चाहे जितनी पुस्तकें नहीं मिल सकती थीं। फिर भी विद्या प्राप्त करने के लिए रास्ते की अनेक तकलीफें सहन कर लोग यहाँ आते और हिन्दुस्तान से ज्ञान प्राप्त कर लौटते थे। उस समय हमारा देश बहुत उन्नत और पवित्र था। भारतवर्ष के बारे में लिखनेवाला इतिहासकार नालन्दा और तक्ष-शिला को नहीं भूल सकता।

कहते हैं भगवान् महावीर और गौतम बुद्ध ने कुछ चातुर्मास नालन्दा में किए थे। 'चातुर्मास' का सीधा और शाब्दिक अर्थ तो चार मास होता है, लेकिन भारत के धर्मों में इसका विशेष अर्थ है। आषाढ़ सुदी १४ से कार्तिक सुदी १४ तक, बरसात के चार महीनों में साधु एक ही स्थान पर रहते हैं, बाहर दूसरे गाँवों में भ्रमण नहीं करते। इन दिनों व्यापार और आवागमन बहुत कम रहता है, गाँवों के सब लोग खेती के कामों में लग जाते हैं। इसलिए आराम से, शान्ति से धर्म-ध्यान में समय बिताने के लिए यह चार महीने बहुत उपयुक्त होते हैं।

नालन्दा का विद्यालय बहुत बड़ा था। उसमें दस हजार विद्यार्थी एक साथ पढ़ सकते थे। कहते हैं, वहाँ [illegible] सौ अध्यापक थे और १०० विषयों का [illegible] होता था। सब के खाने-पीने तथा रहने का [illegible] था। अब [illegible] हो सोच सकते

"यों ही किसी पुरानी बात की गहरी स्मृति के कारण कमजोरी आ गई है, और कुछ नहीं।"

"नहीं, सच-सच बताओ क्या बात है ! वैद्य लोग कहते थे कि मनपर असर बहुत गहरा हुआ है, कहीं........।"

"नहीं, मैं नहीं बतला सकता भाई।" शुभचन्द्र ने कहा।

"तुम्हें बतलाना ही होगा शुभचन्द्र, अन्यथा तुम्हारे दुःख में मेरा विवाह नहीं होगा !"

जब शुभचन्द्र ने गुणचन्द्र का यह आग्रह देखा तो बड़े संकोच के साथ उसने कहा

"भाई, सच तो यह है कि तुम्हारे साथ रत्नमाला का विवाह होनेवाला है यह मुझे मालूम नहीं था। तुम्हारे साथ रात-दिन रहने और उसके सम्पर्क में आने से मैं उसकी ओर आकर्षित होता गया और सोच लिया था कि पिताजी से रत्नमाला अपने लिए माँगने को कहूँगा।"

यह सुनकर गुणचन्द्र ने बड़े प्रेम से कहा —"तो यह कौन बड़ी बात है शुभ, क्या पहले मन स्वस्थ हो। जाओ, रत्नमाला का विवाह तुम्हारे ही साथ होगा।"

गुणचन्द्र की यह बात सुनकर शुभचन्द्र को बहुत अचरज हुआ, उसकी आँखें प्रेम के आँसुओं से तर हो गई। उसने कहा "यह भाई ऐसा नहीं होगा। अब तो जो हो रहा है वही ठीक है। मुझे मेरे [illegible] चिन्ता नहीं है, मैं तुम्हें दुखी नहीं देख सकता।"

उसकी निंदा होने लगी। रत्नमाला के माता-पिता ने भी लोगों को समझाया, लेकिन वहाँ उनकी सुनने वाला कौन था!

बात यहाँ तक बढ़ गई कि गुणचन्द्र का घर के बाहर निकलना तक बन्द हो गया। बाहर निकलता तो लोग ताने देते, उस पर थूकते। उसने निश्चय कर लिया था कि कोई कुछ भी कहे, लेकिन अपनी ओर से सफाई नहीं दी जाय। होते-होते परिस्थिति यह आ गई कि उसे राजगृह में रहना कठिन हो गया। आखिर वह घर से निकल पड़ा।

लेकिन दुर्भाग्य तो उसके साथ लगा ही था। रास्ते में चोरों ने उसका सारा धन लूट लिया। वर्षों तक वह मारा-मारा फिरता रहा लेकिन उसे कहीं काम न मिला।

घूमते-घूमते वह वाराणसी (बनारस) पहुँचा। उसके कपड़े फटकर चिथड़े हो रहे थे, महीनों से हजामत न कराने के कारण सिर और दाढ़ी के बाल बढ़कर उसके रूप को और भी भयानक और बेडौल बना रहे थे। शरीर एकदम कमजोर हो गया था। ऐसी विषम स्थिति में उसने बनारस की एक धर्मशाला में रात को डेरा दिया। पड़ते ही उसे नींद आ गई।

वाराणसी में विमलसेन नामक एक धनिक श्रेष्ठी रहते थे। उस दिन रात को डाकुओं ने विमलसेन श्रेष्ठी को मारकर उनका धन लूट लिया। घर के लोगों के जाग जाने से जो कुछ हाथ लगा, उसे लेकर चोर भाग छूटे। नगर-रक्षक को सूचना दी गई। उन्होंने चोरों का पीछा किया। कई एक तो गली आदि देखकर

शुभचन्द ने राजा से गुणचन्द का परिचय करवाया और प्रार्थना करके न्याय-मंत्री का पद गुणचन्द को दिलवा दिया।

धीरे-धीरे यह खबर राजगृह तक पहुँच गई। लोगों को अपनी भूल मालूम हो गई। वे अपने न्याय-मंत्री को हटाने का प्रयत्न करने लगे। आखिर राजगृह के राजा ने गुणचन्द्र को सन्मान पूर्वक बुलाकर न्याय-मंत्री का पद सौंप दिया।

गुणचन्द वास्तव में गुणों का चन्द्रमा था। उसके हाथ से किसी का अन्याय नहीं हुआ। पढ़ाई के साथ उसे जो वर्षों का अनुभव हो गया था, इस कारण उसके निष्पक्ष न्याय की कीर्ति चारों तरफ फैलने लगी। अब वह सुखी रहने लगा।

बेटा, इससे तुम जान सकोगे कि गुणचन्द कितना सच्चा मित्र था और संकटों को सहकर भी उसने किसी को बुरा नहीं कहा। संकट आने पर मनुष्यको दुखी नहीं होना चाहिए, बल्कि विचार करना चाहिए कि यह तो परीक्षा का अवसर है। इस परीक्षा में पास होने पर फिर कभी दुख आते ही नहीं। संकट के समय समता और धीरज रखना चाहिए। दुखी होने से दुख दूर नहीं होता। यह भी ध्यान में रखो कि दुखों को सहे बिना कोई महा पुरुष नहीं बन सकता।

काजी साहब

प्यारे राजा बेटा,

आज तुम्हें अरब देश के एक काजी साहब की कहानी लिख रहा हूँ। जानते हो अरबस्तान कहाँ है? वह पश्चिम की तरफ है। बम्बई की तरफ जो अरब समुद्र है, उसका नाम अरब देश से ही बना है। पश्चिम दिशा वह है जिधर सूरज डूबता है। मुसलमानों का धर्म इसी अरब देश से शुरू हुआ है। इसके संस्थापक या चलाने वाले मुहम्मद पैगम्बर थे। इनके तीर्थ-स्थान मक्का, मदीना तथा काबा अरब में ही हैं। मुसलमान लोग पश्चिम की तरफ मुँह करके नमाज इसलिए करते हैं कि काबा के पत्थर का मन्दिर मक्का में है और मक्का पश्चिम में है। यह मुसलमान या इस्लाम धर्म करीब बारह सौ वर्ष पहले स्थापित हुआ है। यह अब दुनिया के बड़े-बड़े धर्मों में से एक है।

अरब देश में रेती ही रेती है। वहाँ पानी बहुत कम है। वहाँ के लोग ऊँटों से सवारी, खेती, गाड़ी आदि के काम लेते हैं। ऊँट रेती में खूब और अच्छा चलता है। उसे पानी भी ज्यादा नहीं लगता। कहते हैं, महीना-महीना भर ऊँट पानी नहीं पीता। मारवाड़ (राजस्थान) में भी बहुत ऊँट हैं। रेतीली भूमि में ऊँट बड़ा उपयोगी जानवर होता है।

काजी साहब दयालु थे। उन्हें दया आ गई। उन्होंने कहा, "जाओ, आज से ठीक पन्द्रहवें दिन दोपहर को सूरज सिपर आने तक हाजिर हो जाना। मैं तुम्हारा जामीन रहता हूँ।" वह आदमी काजी साहब को धन्यवाद देकर घर चला गया। उसने सारे कारोबार यानी लेन-देन, व्यवहार और व्यापार की व्यवस्था की। अपनी बीबी को सब बातें बताई और जाने की तैयारी करने लगा। एक तेज सांड़नी (ऊँटनी) को तैयार रखा, बच्चों को प्यार किया और बीबी से विदा लेने गया तो वह जोर-जोर से रोने लगी। उसका अपने पति (शौहर) पर बहुत प्रेम था। अब उसका पति वापस नहीं लौटेगा, इसका उसे बहुत दुख हुआ और वह शोक करने लगी। उसका यह हृदय पिघलानेवाला दुख और शोक देखकर उसे वह समझाने लगा, सान्त्वना देने लगा। इसमें कुछ देरी हो गई। इसके बाद वह सांड़नी पर सवार होकर चल दिया।

उधर मक्का में दोपहर को सूली पर चढ़ने का समय हो गया, लेकिन अपराधी का पता न था। यह देखकर काजी साहब ने सिपाहियों से कहा कि आप लोग सूली की तैयारी करें! वह नहीं [illegible] गया, [illegible] जामिन तो हाजिर है। लोग हैरान हो [illegible] दुखी होकर रोने [illegible] आई, [illegible]

नहीं चढ़ने देंगे। काजी साहब ने कहा—"दोस्तो, आप मुझपर मुहब्बत यानी प्रेम है, इसीलिए आप कानून को तोड़ना चाहते हैं। लेकिन यह ठीक नहीं। चाहे जितना बड़ा और प्यारा आदमी हो, उसे कानून के आगे सिर झुकाना ही चाहिए। कानून के मुताबिक सबको चलना ही चाहिए। अगर वैसा न किया तो याद रखो, हम सब बर्बाद हो जायेंगे। अपने प्यारे पैगम्बर साहब ने जो कहा है और अपनी भलाई के लिए जो कानून-नियम बनाए हैं, वे नहीं चलेंगे और उनकी की हुई मेहनत मिट्टी में मिल जावेगी। न्याय-इन्साफ में कोई छोटा बड़ा नहीं होता। इन्साफ इन्साफ ही है।" इतना कह कर काजी साहब सूली पर चढ़ ही रहे थे कि एक आदमी बेतहाशा बड़े जोर से साड़नी दौड़ाता हुआ आ रहा था और चिल्ला रहा था "ठहरिये! ठहरिये!! मैं आ रहा हूँ।" लोगों ने देखा कि सचमुच वही आदमी है जिसे सूली पर चढ़ाना था।

लोगों ने काजी साहब को सूली के तख्ते से उतारा। वे उतरते ही उस आदमी से गले मिले। और सब लोगों की तरफ मुँह करके उन्होंने ऊँची आवाज में कहा—"भाइयो, जो आदमी अपने वादे का—कही हुई बात का इतना ख्याल रखता है, इतना ईमानदार हो, वह डाका नहीं डाल सकता। उसके हाथों से ऐसा बुरा काम नहीं हो सकता, ऐसा मुझे यकीन-विश्वास है। इसलिए यदि आप लोगों की इजाजत हो तो मैं इसे रिहा कर देता हूँ—छोड़ देता हूँ। सभी ने एक आवाज से कहा—छोड़ दीजिए, छोड़ दीजिए। यह बेकसूर है।

काजी साहब ने उस आदमी को छोड़ दिया। जब वह घर जाकर अपने बीबी-बच्चों में मिला, तो उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उन्हें उतनी ही खुशी हुई जितनी हमारे नागपुर जेल से छूटनेपर तुम्हें हम से मिलकर होगी।

—रिषभदास के प्यार।

एक रूप हिन्दू तुरक, दूजी दशा न कोय।
मन की दुविधा मानकर, भये एक सौ दोय॥

—बनारसीदास

जग में बैरी कोई नहीं, जो मन सीतल होय।
या आपा को डारि दे, दया करै सब कोय॥
जैसा अन-जल खाइये, तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिये, तैसी बानी सोय॥
[illegible] सौ उपजै, अमृत, कडु औ नीच।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

: १२ :

जॉर्ज वॉशिंगटन

प्यारे राजा बेटा,

क्या यह ठीक है कि तुमको कहानी सुनने का शौ
लगा है ! जब तुम्हारी बहन कहानी कहती है तब तुम जो
में आकर मस्ती करने लगते हो और उसे तंग भी कर
लगते हो। तुम्हारा मस्ती करना और उछलना कूदना या जोश
आना बुरा नहीं है, लेकिन बड़ी बहन को तंग करना क्या अच्छा है
तुम्हीं बताओ, तुमको अगर कोई तंग करे तो क्या अच्छा लगेगा ! जै
किसी से तंग आना तुमको अच्छा नहीं लगता उसी तरह तुम्हा
बड़ी बहन को भी पसंद नहीं आवेगा। सो, तुम आइंदा उसे सताओ
नहीं, ऐसी मैं उम्मीद करता हूँ।

बड़े आदमियों की कहानियाँ सुनते समय तुमको बड़ा आदमी
बनने की इच्छा होती है न ? आदमी बड़ा कैसे बनता है इसके
मैं तुमको एक कहानी लिखता हूँ। तुम्हारे जैसा एक लड़का थ
जिसका नाम था जॉर्ज वॉशिंगटन। वह अमेरिका में रहता था।
अमेरिका कहाँ है ? अपने नीचे, जिसे पहले पाताल-लोक कहते थे
जब अपने यहाँ सूरज डूबता है तब वहाँ रात पड़ती है और जब
वहाँ सूरज निकलता है तब अपने यहाँ रात होने लगती है। वह

। बड़ा ही सुहावना है। वहाँ के लोग सुखी हैं; वहाँ के मकान ७०-८० मंजिल के होते हैं। ऐसे मकानोंपर चढ़ने के लिये बिजली झूले (लिफ्ट) रहते हैं। अमेरिका में हर दस आदमी के पीछे एक मोटर है। दुनिया की एक-तिहाई मोटरें अमेरिका में हैं। वहाँ कोई भूखा नहीं मरता, सब लोग खा-पीकर सुखी हैं। यह देश सुखी कैसे हुआ? जॉर्ज वॉशिंग्टन की वजह से। पहले यह देश भी अपनी तरह ही अंग्रेजों के अधीन था। जॉर्ज वॉशिंग्टन ने अमेरिका को स्वाधीन किया। इससे वहाँ के लोगों को अपनी तरक्की करने का मौका मिला। इसलिये जॉर्ज वॉशिंग्टन को वे पूजा करते हैं। उसके गुनों को वे याद करते हैं।

उसकी किसी वर्ष-गाँठ के अवसरपर उसके पिता ने उसे एक छोटी-सी कुल्हाड़ी इनाम में दी। तुम्हारी माँ भी तुम्हारी वर्ष-गाँठ यानी जन्म-दिन मनाती है न! उस दिन तुमको नये कपड़े पहनाकर अच्छा भोजन खिलाया जाता है। कुल्हाड़ी मिलने पर वॉशिंग्टन बहुत खुश हुआ। वह अपने पिता के बगीचे में गया। कुल्हाड़ी तो उसके पास थी ही। एक सुंदर छोटे से [illegible] कुल्हाड़ी चलाई और उसकी छाल निकाल ली। उसने [illegible]

[illegible] दूसरे दिन उसके पिता बगीचे में गये। उस पेड़ की [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

इस पौधे को मैंने छीला है। यह मेरी गलती हुई। मुझे मालूम न था कि पौधे को इस तरह नुकसान पहुँचेगा, इसलिये क्षमा करें।" उसने पिताजी के गुस्से के डर से झूठ न बोलकर अपनी भूल मंजूर कर ली। इससे उसके पिता बहुत खुश हुए। और उसको उन्होंने गोद में उठाकर चूमा और शाबासी दी।

यह बालक इसी तरह सचाई को अपनाकर बड़ा आदमी बना और अपने देश के लिये लड़कर आजादी प्राप्त की और उसे सुखी किया। जिन बच्चों को बड़ा बनना हो उन्हें जॉर्ज वॉशिंग्टन की तरह निडर बनकर सच बोलने की आदत डालनी चाहिये।

— रिषभदास के प्यार।

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे सांच है, ताके हिरदे आप॥
कबिरा संगत साधुकी, ज्यों गंधीका बास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुवास॥
जो तोकौं कांटा बुवै, ताहि बोय तू फूल।
तोको फूल के फूल हैं, वाको है तिरसूल॥
कबिरा आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगा सुख होत है, और ठगे दुख होय॥

—कबीर

होली

प्यारे राजा बेटा,

सामने होली का त्योहार आ रहा है। तुमने लोगों को होली खेलते हुए देखा तो होगा। अपने-अपने तरीके से हँसी-विनोद करते हुए सब लोग यह त्योहार मनाते हैं। कोई गीत गाते हैं, कोई रंग डालते हैं, कोई नाचते, गालियाँ देते, ढोलक बजाते और कीचड़ उछालते हैं। फाल्गुन सुदी १५ के दिन लकड़ी और कण्डे जमा कर के आग लगाई जाती और पूजा की जाती है। अब तुम शायद यह जानना चाहोगे कि यह त्योहार क्यों मनाया जाता है!

तुमने अपनी माँ से प्रह्लाद की कथा सुनी है न ? भगवान् के बाल-भक्तों में प्रह्लाद का बहुत ऊँचा स्थान है। मुझे यह कहानी बड़ी अच्छी लगी है, इसीलिए लिख रहा हूँ।

पुराणों में कहा है कि प्राचीन समय में हिरण्यकशिपु नामक एक राजा था। वह बहुत ही दुष्ट और क्रोधी स्वभाव का था। [illegible]

प्रह्लाद की बातों से हिरण्यकश्यपु को बहुत क्रोध आया और नौकरों से कहा कि इसे नदी में डुबाकर चले आओ।

प्रत्यक्ष में राजा की आज्ञा को मानकर वे प्रह्लाद को ले गए, परन्तु उसे नदी में नहीं डुबा सके—उनका हृदय प्रेम से भर आया। अब प्रह्लाद वहाँ से फिर लौट आया। उसे देखकर राजा को बहुत बुरा लगा। उसने अपने विश्वस्त अनुचरों से कहा कि जाओ इसे ऊँचे पहाड़ पर से गिरा दो। लेकिन प्रह्लाद जैसे निर्दोष और प्रेमी बालक को गिराने की हिम्मत नहीं हुई। वे उसे जंगल में छोड़कर आगए। पूछने पर उन्होंने झूठ-मूठ ही कह दिया कि प्रह्लाद को गिरा दिया है।

कुछ दिनों बाद प्रह्लाद फिर हाजिर हो गया। लोगों में बातें फैल गईं कि भगवान् ने अपने भक्त को नदी में डूबने से और पहाड़ पर से गिरने से बचा लिया—झेल लिया। तुम जानते हो इसका क्या अर्थ है? भगवान् ने बचा लिया इसका अर्थ यह है कि उसके हृदय की सचाई और प्रेम ने ही उसकी रक्षा की। इसी कारण बालक प्रह्लाद के प्रति जनता में प्रेम बढ़ने लगा और हिरण्यकश्यपु के प्रति तिरस्कार।

हिरण्यकश्यपु ने विचार किया कि अब मुझे ही इसके मरवाने की व्यवस्था करनी चाहिये। निदान उसने एक हाथी बुलवाया और प्रह्लाद के शरीर पर से उसे ले जाने की महावत को आज्ञा दी। लेकिन हाथी टस से मस नहीं हुआ। जो सब पर प्रेम करता है, उस पर हाथी कैसे चलेगा? आखिर उसने अपनी बहिन होलिका

[illegible] कहा कि वह प्रह्लाद को अपनी गोदी में लेकर बैठ जाये ताकि [illegible] जल जाए। होलिका के पास ऐसी दवाई थी कि उसका लेप करने से आग का असर नहीं होता था। ऐसा उसने कई अपराधियों को जलाते समय किया। दवाई का लेप करने से वह बच जाती थी। लेकिन प्रह्लाद को गोदी में लेते समय उसके विचार बदल गए। दवाई का लेप प्रह्लाद को कर दिया जिससे वह तो जल गई और प्रह्लाद बच गया। यह बात किसी को मालूम नहीं हो सकी थी। इसलिए लोगों ने सजा होने वाले काण्ड के विरुद्ध दृश्य देखकर कहा कि प्रह्लाद को भगवान् ने बचा लिया। जब लोगों को थोड़ी देर बाद इसका कारण मालूम हुआ तो होलिका की पूजा होने लगी। क्योंकि प्रह्लाद को बचाने के लिए वह स्वयं जल मरी!

प्रह्लाद के बच जाने से सब लोग हँसने-उछलने लगे। उल्लास में आने पर आदमी आपे के बाहर हो जाता है और कुछ अनुचित काम भी करने लग जाता है।

बेटा, अच्छे लोगों का प्रत्येक काम अच्छा होता है और बुरों का बुरा। यही बात त्यौहार का आनंद उठाने के बारे में है। तुमने देखा होगा कि इस त्यौहार पर कुछ लोग एक दूसरे पर राख-कीचड़ [illegible] उछालते हैं, कुछ [illegible]-गुलाल उड़ाते हैं, कुछ पानी से सन्तोष [illegible] हैं [illegible] दूसरों को [illegible] देकर आनन्द पाने [illegible] होते हैं [illegible] में आनन्द लेते हैं, कुछ लोगों को दूसरों [illegible] आनन्द आता है। अब तुम ही

तुमने राजपूत जाति का नाम तो सुना है न ! हम लोग भी राजपूताने के ही हैं। राजपूताने में छोटे-छोटे कई राज्य और राजा हो गये हैं। राजपूत जाति लड़ने में बड़ी बहादुर मानी जाती है। छोटे-छोटे राज्य होने से यहाँ हर समय लड़ाई की शंका रहती थी और संकट भी आया करते थे। जब कोई राजा मर जाता और उसके कोई लड़का नहीं होता तो रानी ही राज्य चलाती थी। ऐसी हालत में जब दूसरा कोई लोभी राजा शत्रु बनकर उसके राज्य को जीतना चाहता तब ये राजपूत बहनें किसीको भाई मानकर राखी भेजतीं और उसे अपनी मदद के लिए बुलाती थीं। ऐसी राखियाँ अधिकतर अपनी जाति में ही भेजी जाती थीं, परंतु दूसरी जाति और धर्मवालों को भी मौका आने पर भेजी जाती थीं।

चार-सौ साल पहले की मेवाड़ की बात है। भारत के नक्शे को सामने रखकर मेवाड़ को देखना। यह राजपूताने में एक प्रसिद्ध राज्य है। मेवाड़ का राज-वंश राजपूतों में बहुत नामी, ऊँचा और प्रतिष्ठित माना जाता था, क्योंकि ये लोग बड़े वीर, बहादुर और बात के पक्के होते थे। ये मुसलमान बादशाहों के आगे कभी नहीं झुके। अन्तिम घड़ी तक अनेक मुसीबतें उठा-उठाकर भी लड़ते रहते और लड़ते-लड़ते ही मर जाते थे, परंतु सिर झुकाने को सबसे बड़ा पाप समझते थे। उस समय देश में मुसलमानों का राज्य और शक्ति बहुत बढ़ गई थी। कई राजपूत राजाओं ने उनकी अधीनता मंजूर कर ली और अपनी बहन-बेटियों की शादियाँ भी

बादशाहों से कर दी। लेकिन मेवाड़ का सिर हमेशा ऊँचा ह;
ा। मेवाड़ी राजपूत अपनी आन-बान के लिये हँसते-हँसते मर जाने
वाले वीर थे।

तो अब तुम्हें कहानी सुनने की उत्सुकता होगी।

मेवाड़ के राणा संग्रामसिंह की मृत्यु के समय उनके पुत्र उदयसिंह की अवस्था बहुत छोटी थी। संग्रामसिंह का एक दासी-पुत्र भी था। उस समय राजा लोग दासियाँ भी रखते थे और इनसे उत्पन्न पुत्र दासी-पुत्र कहलाते थे। बनवीर ऐसा ही एक दासी-पुत्र था। संग्रामसिंह की मृत्यु के बाद राज्य-वंश में सवाल उठा कि अब गद्दी पर किसे बिठाया जाय—उदयसिंह तो दूध-पीता बालक था। अतएव सरदारों ने तय किया कि उदयसिंह के बड़े होने तक बनवीर को राज्यगद्दी पर बिठाया जाय। लेकिन बनवीर बहुत ही क्रूर, दुष्ट और नीच था। उसने सोचा कि यदि मैं उदयसिंह को मार डालूँ तो अच्छा रहेगा क्योंकि यदि वह जिन्दा रहा तो मुझे राज्य त्याग देना होगा। यह सोच वह तलवार लेकर रनवास में गया। लेकिन यह खबर वहाँ पहले ही पहुँच गई थी। उदयसिंह पन्ना नामक दाई के पास पल रहा था। पन्ना बड़ी स्वामी-भक्त और राज-भक्त थी। उसने खबर पाते ही हाथों-हाथ एक टोकनी में उदयसिंह को किले के बाहर भेज दिया और उसके स्थान पर अपने लड़के को सुला [illegible]। बनवीर ने आते ही पन्ना से पूछा तो उसने अंगुली से अपने [illegible] लड़के की ओर [illegible] कि यही उदयसिंह है। बनवीर ने अपने [illegible] और चला गया

को अपनी आँखों के आगे मरते देखकर भी पन्ना ने धीरज नहीं खोया। कितनी पवित्र स्वामीभक्ति थी उसमें। धन्य हैं ऐसी माताएँ!

बनवीर की क्रूरता और नीचता से सभी सरदार नाराज हो गए। राज्य में अव्यवस्था फैल गई, अत्याचार बढ़ गए। व्यवस्था और एकता खतम हो गई। यह समाचार पाकर गुजरात का सुल्तान बहादुरशाह बहुत खुश हुआ। वह अहमदाबाद में, जिसे कर्णावती कहते थे, रहता था। उसने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी।

उस समय चित्तौड़ मेवाड़ की राजधानी थी। चित्तौड़ का किला बहुत प्रसिद्ध है। वह पहाड़ पर है, इससे दुश्मन को उसे जीतने में काफी मेहनत पड़ती है। बहादुर मेवाड़ियों का सामना करना कोई हँसी-खेल नहीं था, इसमें दुश्मन को बहुत हानि उठानी पड़ती थी। पर इस बार राजपूतों में संगठन न देखकर राजमाता कर्मावती ने दिल्ली के बादशाह हुमायूँ के पास राखी भेजकर मदद के लिए संदेश दिया।

इधर गुजरात का सुल्तान जल्दी आ पहुँचा। राजपूतों ने सामना किया, लेकिन आपसी कलह के कारण उनमें पहले जैसी ताकत नहीं रह गई थी। यद्यपि हुमायूँ के दूत ने आकर कह दिया कि वह जल्दी ही मदद को आ रहे हैं, पर यहाँ तो एक-एक दिन मुश्किल जा रहा था। शत्रु की सेना आगे बढ़ रही थी। इसलिए निरुपाय होकर सबने तैयारी की और कर्मावती ने अपने को सबके

: १५ :

१५ अगस्त

प्यारे राजा बेटा,

कल १५ अगस्त है। अब अपना देश आजाद हो रहा है। नगर में चारों तरफ जो चहल-पहल और खुशियाँ दीख रही हैं, इसका क्या कारण है ! अब तक अपना देश परतंत्र यानी गुलाम था। अब हम गुलामी से दूर हो रहे हैं, इसी से सबको खुशी हो रही है। एक कैदी को जेल से छूटने पर जैसा आनन्द होता है वैसा ही आनन्द आज हम सबको हो रहा है। अब इस देश में जनता का ही राज्य होगा, उसका ही कारोबार होगा !

तुम कहोगे, हम कैसे गुलाम थे ! गुलाम या नौकर तो वह होता है जो खूब काम करता है और मालिक को कमा कर देता है। फिर भी आराम से नहीं रह पाता। सुख से खाने-पीने को नहीं मिलता। लेकिन कोई ऐसा तो नहीं दीखता।

नहीं बेटा, ऐसी बात नहीं है। हिंदुस्तान पूरा गुलाम हो था। क्या तुम नहीं समझते कि हिंदुस्तान पर अंग्रेज लोग राज्य करते थे और टैक्सों, व्यापारों आदि के जरिए हमारी कमाई का बहुत ज्यादा भाग वे अपने देश में ले जाते तथा खुद के लिए खर्च करते थे। हिन्दुस्तान के समझदार लोगों ने इस बात को समझ

सेवा और देश को आज़ाद करने की कोशिश में लग गये। कांग्रेस का नाम तुमने सुना है न! इस संस्था में काम करने वाले पूज्य बापू, डॉ॰ राजेन्द्रप्रसादजी, पं॰ जवाहरलालजी, सरदार वल्लभभाई पटेल आदि अनेक नेता हैं। इन लोगों ने देश को आजाद करने में अपनी धन-सम्पत्ति का त्याग तो किया ही, लेकिन अनेक प्रकार की तकलीफें भी उन्हें सहनी पड़ीं। कई बार उन्हें जेल भेजा गया, पीटा गया, हथकड़ियाँ पहनाई गईं। ऐसे हजारों देशभक्तों को देश-सेवा में अपने सुखों का बलिदान करना पड़ा। कई तो मौत के मुँह में पहुँचा दिए गए। कइयों की जायदाद लूट ली गई, जब्त कर ली गई। पचास वर्षों के प्रयत्न के बाद इन सब कुर्बानियों का फल आज मिल रहा है। इसी की सबको खुशी है।

फिर भी दूसरे देशों की अपेक्षा अपने देश को बहुत कम मुसीबतें उठानी पड़ी हैं। दूसरे देशों के इतिहास भयंकर खून-खराबी, लड़ाई, मार-काट से भरे हुए हैं। लेकिन पूज्य बापूजी के सत्य (सचाई) और अहिंसा (प्रेम) के कारण बड़ी सरलता से आज़ादी मिल गई। आज़ादी तो मिल गई, लेकिन इसे टिकाए रखना सबसे बड़ी बात है। इतनी योग्यता हम सब में होनी चाहिए। यदि हम सब मूर्ख या अयोग्य रहे तो हम आज़ादी का सुख नहीं पा सकेंगे। एक आदमी को हीरा मिला, लेकिन मूर्खता के कारण कौए को उड़ाने के लिए फेंक दिया। ऐसा अगर हम करेंगे तो दूसरे हमारी आज़ादी छीन लेंगे।

प्यारे राजा बेटा

[दूसरा भाग]

: लेखक :

रिषभदास रांका

: सम्पादक :

जमनालाल जैन, साहित्यरत्न

भारत जैन महामण्डल, वर्धा

स्व० राजेन्द्र ग्रंथ-माला—२
प्रथम संस्करण ३००० : मार्च १९५०

मूल्य— दस आने

प्रकाशक :
मूलचंद बड़जाते
सहायक मंत्री
भारत जैन महामण्डल, वर्धा

मुद्रक :
सुमन वात्स्यायन
राष्ट्रभाषा प्रेस
हिन्दीनगर, वर्धा

अनुक्रमणिका

अपनी ओर से

आदमी जन्म लेता है और मृत्यु की महा-नींद में सो जाता है। सृष्टि में यह सदा से होता आया है। लेकिन घटनाएँ हैं कि उनका इतिहास बनता है, कहानियाँ चलती हैं। महापुरुषों, ज्ञानियों और सन्तों ने इसे जीवन कहा है, अमरता कहा है। प्रस्तुत कहानियों का भी एक घटनात्मक इतिहास है, जिसका प्रारंभ आनन्द और उत्साह-प्रद रहा।

सन् '४२-४३ में जब श्री० रांकाजी जेल में थे और उन्हें ज्ञात हुआ कि राजेन्द्र को कहानियाँ सुनने, सीखने का शौक है, तब उन्होंने वहाँ पर पूज्य विनोबाजी और श्रद्धेय काका साहब कालेलकर आदि विज्ञों से चर्चा की। उन्होंने कहा, बालकों को ऐसा ही साहित्य पढ़ने को देना चाहिए जिससे वे सहज रूप से इतिहास, भूगोल, धर्म, विज्ञान आदि विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। अतः लेखक के मन में कल्पना उत्पन्न हुई और परिणाम में ये पत्र-कथाएँ लिखी गईं, जिनकी संख्या करीब ५० होगी। पत्र हृदय की वस्तु होते हैं। और आत्मीय भाव से, सहज सुगमता से और सरल भाषा में लिखे होने से भीतर तक प्रविष्ट हो जाते हैं। इन कहानियों का प्रारंभ 'प्यारे राजा बेटा' से हुआ और अन्त 'रिषभदास के प्यार' में।

यों तो अब तक विविध लेखकों ने नैतिक और मनोवैज्ञानिक विकास की दृष्टि से अनेक कहानियाँ लिखी हैं [illegible] 'विश्व के महापुरुषों [illegible] कथाओं के प्रति सहज [illegible] और [illegible] के साथ बालकों में

स्वर्गीय राजेन्द्र

'होनहार बिरवान के, होत चीकने पात' यह लो...
बड़ी तथ्य-पूर्ण है। शास्त्र-पुराणों और ऐतिहासिक घटनाओं
इसकी यथार्थता का दर्शन होता है। स्व० राजेन्द्र भी ऐसा
बालक था। ध्रुव, प्रह्लाद तथा अन्य भक्त बालकों की
सहस्रों-लाखों वर्षों के व्यवधान से श्रद्धा और भक्ति की चीजें
गईं, ताजा और प्रत्यक्ष होतीं तो वे भी कुतूहल पैदा करतीं
लेकिन आत्मा बहुत बड़ी चीज है। वह समय और स्थिति
सीमाओं या बाधाओं से अतीत है! प्रगति-पथ पर अग्रसर
शरीर में रहती तो है, उससे चिपट नहीं जाती। एक नहीं,
इस प्रकार यह अपनी क्रमागत प्रगति के लिए नूतन देह भी
कर लेती है और कार्य पूरा होने पर देह से भी अतीत हो
तक पहुँच जाती है। शायद स्व० राजेन्द्र को भी हम इसी श्रेणी
रख सकें!

राजेन्द्र का जन्म ७ मार्च सन् १९५० को जलगाँव (पू.
में हुआ। जन्म लेते ही, उसके पिता, श्री० रिषभदास रांका के
में सुख-समृद्धि बढ़ने लगी। एक विशेष आनन्द और श...
शान्ति का वातावरण घर में निर्माण हो गया। पिता के जीवन ...
कांग्रेस अथवा गांधी-विचार-धारा का प्रभाव तो था ही, परम्परा
गत धार्मिक संस्कार भी जीवन-शोधन में सहायक रहे।
जमनालालजी बजाज की प्रेरणा से, अब यह रांका-परिवार वर्धा
आ गया। पिता गो-सेवा-संघ में अपनी सेवा देने लगे।

राजेन्द्रकुमार रांका

५ मार्च १९४०

मृत्यु
१ सितम्बर १९
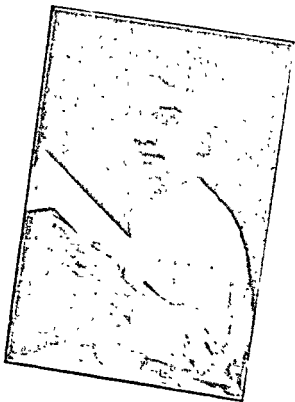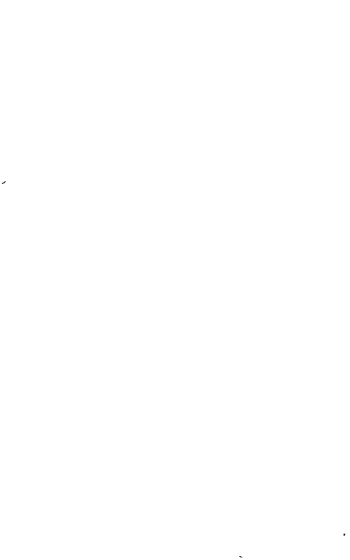
बजाजवाड़ी (वर्धा) के संयत और धार्मिक वातावरण तथा गुरु-नेताओं के दर्शन-आशीर्वाद से राजेन्द्र के विकास में बड़ी सहायता मिली। वह तीन वर्ष की आयु में बाल-मन्दिर जाने लगा था।

राजेन्द्र साढ़े-तीन साल का हुआ ही था कि सन् '४२ के अगस्त में उसके पिता कृष्ण-मंदिर भेज दिये गए। १६ मास तक वह प्रत्यक्षतः पिता की संगति से दूर रहा, लेकिन परोक्ष रूप से पिता के प्रबुद्ध-प्यार ने राजेन्द्र को 'साधारणता' से बहुत ऊँचा उठा दिया।

घर में प्रतिदिन सुबह-शाम प्रार्थनाएँ होती रहती थीं। राजेन्द्र पर इन प्रार्थनाओं और भजनों का पर्याप्त असर हुआ। वह अपनी माँ की गोद में भजन सुनते-सुनते लेट जाता। उसे 'दीनन दुख हरन देव सन्तन हितकारी', 'वैष्णव जन तो तेणे कहिये', और 'प्राणी तू हरि सौं डर रे' भजन तथा राष्ट्रीय-गानों में 'जन-मन-गण' गान बहुत प्रिय था।

जेल में पिता को जब मालूम हुआ कि राजेन्द्र को कहानियाँ सुनने का शौक है, तब वे समय-समय पर कथा-पत्र उसके नाम से भेजते रहे, जिन्हें उसकी बड़ी बहन सुनाया करतीं। सुनते-सुनते उसे रामायण और महाभारत के प्रमुख पात्रों की कथाएँ मालूम हो गईं और बार-बार उनका स्मरण किया करता। कहानियाँ सुनते-सुनते उसकी जिज्ञासा स्वयं पढ़ने की हुई, तो बड़े अक्षरों में छपी कहानियाँ पढ़ने लगा। उसकी इस रुचि और विकास को देख कर माता-पिता का हृदय सहज प्रसन्नता से उद्यान हो उठा। पहला पत्र जॉर्ज वाशिंगटन सम्बन्धी था।

पाँचवें वर्ष में उसे पढ़ाने के लिए ऐसी शिक्षिका की नि-
की गई जो उसे कहानियों द्वारा, पर्यटन द्वारा सामान्य ज्ञान दे
सकें। ज्ञान भार-रूप न हो, इसका ध्यान रखा गया। यह
पढ़ाई का व्यवस्थित प्रारम्भ था। पाठशाला में वह भर्ती कि-
गया और तीसरी कक्षा में प्रविष्ट हुआ। परीक्षा में, श्रेणी
में सर्वप्रथम आया। 'कल्याण' मासिक के अंकों और विशे-
चित्रों ने उसके धार्मिक संस्कारों को जाग्रत करने में मदद दी।
उसने अपने कमरे में एक मूर्ति को सिंदूर लगाकर प्रतिष्ठित
किया और नियमित रूपसे उसकी पूजा किया करता था।
पिता उसकी स्वतन्त्र भावना, जिज्ञासा और प्रवृत्ति में बाधा
डालना उचित नहीं समझते थे। यही कारण है कि जितनी
उसमें पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी के प्रति थी, उतनी ही
विष्णु, बुद्ध और ईसा आदि के भी प्रति। ऐसे चित्र प्रायः
अपनी पुस्तकों में भी रखता।

पू० विनोबाजी ने उसे अपनी 'गीताई' (गीता का
पद्यानुवाद) प्रदान की। वह उसे बराबर पढ़ता था।
कार्य-कर्ताओं की परिषद के समय एक बार पं० जवाहरलाल
नेहरू ने उसके सिर पर प्यार भरा हाथ फेरा तो वह बहुत प्रसन्न
हुआ। बजाजवाड़ी के वातावरण में उसने महात्माजी, पू० राजेन्द्र
बाबू, राजाजी, वल्लभभाई पटेल आदि बहुत से राष्ट्र-सेवकों
दर्शन किए थे। ऐसे समय वह बड़े सहज भाव से रहता।
तरह वह निस्संकोची हो गया था।

वह उद्दण्ड और गंदे विद्यार्थियों की संगति में नहीं रहा।
उसके चाचा ने पूछा, तो कह दिया कि "मैं ऐसे लड़कों के साथ

[illegible] पैदा होते हैं और [illegible] करते हैं। [illegible] और [illegible] में थी और [illegible] था।

उसके पिता ने समझा दिया था कि बाजार [illegible] की [illegible] नहीं खानी चाहिए। एक बार ऐसा ही मौका आ गया। उसके मित्र अपने [illegible] मित्रों के साथ [illegible] रहे हुए थे। उससे बहुत आग्रह किया गया, किन्तु उसने [illegible] कोई [illegible] नहीं खाई। किसी तरह पटाखे आदि भी वह नहीं छुड़ाता था।

एक बार महात्मा गांधी [illegible] के [illegible] की मनोहर-[illegible] से उसके पिता ने [illegible] के [illegible] आदि पर कुछ रुपये दिये थे। [illegible] गया और [illegible] जाने पर एक सज्जन से उसने [illegible] ही कह दिया कि अपने बच्चों को नंगे पैर [illegible] न कीजिए। उसकी [illegible] इस समझदारी पर सब अचरज करने लगे।

माता-पिता पर उसकी असीम भक्ति थी। उनकी आज्ञा के बिना वह कोई काम नहीं करता था। सिनेमा भी वह चाहे-जैसा नहीं देखता था। माता-पिता के पैर दबाने, मालिश करने, उन्हें तकलीफ न होने देने में उसे आनन्द आता था। फिजूलखर्ची से उसे नफरत थी। घर में जब कभी फिजूलखर्ची होती तो उसे बड़ा दुःख होता। उसका आहार भी बड़ा सात्त्विक और संयत था।

वह गाय और बछड़ों पर बहुत प्यार करता था। एक बछड़े का तो नाम ही, उसने अपने अनुरूप 'राजा' रख दिया। मृत्यु के दो घंटे पूर्व उसने उसकी याद की थी।

राजनीति की मोटी-मोटी बातें उसे मालूम थीं। वह अख-बार पढ़ता रहता था। बापू की हत्या से उसे बड़ा दुःख हुआ था।

ों खिलौना जो गन्दे रहते हैं और गालियाँ बकते रहते हैं।" उसकी मित्रता अच्छे और संस्कारी बालकों से थी और उन्हें पत्र भी लिखता था।

उसके पिता ने समझा दिया था कि बाजार या होटल की चीजें नहीं खानी चाहिए। एक बार ऐसा ही मौका आ गया। उसके पिता अपने दो-एक मित्रों के साथ नागपुर गये हुए थे। उससे बहुत आग्रह किया गया, किन्तु उसने होटल की कोई वस्तु नहीं खाई। किसी तरह पटाखे आदि भी वह नहीं उड़ाता था।

एक बार महारोगी सेवा-मण्डल के व्यवस्थापक श्री मनोहर-जी ने उसके पिता से कोढ़ के संसर्ग आदि पर कुछ चर्चा की थी। उसे वह समझ गया और मौका आने पर एक सज्जन से उसने मोटर से उतरते ही कह दिया कि अपने बच्चों को नंगे पैर अन्दर मत ले चलिए। उसकी अवस्थागत इस समझदारी पर सब अचरज करने लगे।

माता-पिता पर उसकी अनन्य भक्ति थी। उनकी आज्ञा के बिना वह कोई काम नहीं करता था। सिनेमा भी वह चाहे-जैसा नहीं देखता था। माता-पिता के पैर दबाने, मालिश करने, उन्हें तकलीफ न होने देने में उसे आनन्द आता था। फिजूलखर्ची से उसे नफरत थी। घर में जब कभी फिजूल-खर्ची होती तो उसे बड़ा दुःख होता। उसका आहार भी बड़ा सात्विक और संयत था।

वह गाय और बछड़ों पर बहुत प्यार करता था। एक बछड़े [illegible] नाम ही, उसने अपने अनुरूप 'राजा' रख दिया। मृत्यु के [illegible] पूर्व उसने उसकी याद की थी

राजनीति की मोटी-मोटी बातें वह समझता था। वह अत्य-[illegible] रहता था, बापू की हत्या से उसे बड़ा दुःख हुआ था।

पाँचवें वर्ष में उसे पढ़ाने के लिए ऐसे शिक्षक की नियु[illegible] की गई जो उसे कहानियों द्वारा, पर्यटन द्वारा सामान्य ज्ञान [illegible] सके। ज्ञान भार-रूप न हो, इसका ध्यान रखा गया। यह [illegible] पढ़ाई का व्यवस्थित प्रारम्भ था। पाठशाला में वह सातवें [illegible] गया और तीसरी कक्षा में प्रविष्ट हुआ। परीक्षा में, अस्सी [illegible] में सर्वप्रथम आया! 'कल्याण' मासिक के अंकों और विशेषां[illegible] चित्रों ने उसके धार्मिक संस्कारों को जाग्रत करने में मद[illegible] उसने अपने कमरे में एक मूर्ति को सिंदूर लगाकर प्रतिष्ठि[illegible] किया और नियमित रूपसे उसकी पूजा किया करता था। [illegible] पिता उसकी स्वतन्त्र भावना, जिज्ञासा और प्रवृत्ति में [illegible] डालना उचित नहीं समझते थे। यही कारण है कि जितनी उसमें पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी के प्रति थी, उतनी ही विष्णु, बुद्ध और ईसा आदि के भी प्रति। ऐसे चित्र प्रा[illegible] अपनी पुस्तकों में भी रखता।

पू० विनोबाजी ने उसे अपनी 'गीताई' (गीता का पद्यानुवाद) प्रदान की। वह उसे बराबर पढ़ता था। [illegible] कार्य-कर्ताओं की परिषद् के समय एक बार पं० जवाहर नेहरू ने उसके सिर पर प्यार भरा हाथ फेरा तो वह बहुत [illegible] हुआ। बजाजवाड़ी के वातावरण में उसने महात्माजी, पू० बापू, राजाजी, वल्लभभाई पटेल आदि बहुत से राष्ट्र-सेवकों [illegible] दर्शन किए थे। ऐसे समय वह बड़े सहज भाव से रहता। [illegible] तरह वह निस्संकोची हो गया था।

वह उद्दण्ड और गंदे विद्यार्थियों की संगति में नहीं रह[illegible] उसके चाचा ने पूछा, तो कह दिया कि "मैं ऐसे लड़कों के साथ

ही खेलूँगा जो गन्दे रहते हैं और गालियाँ बकते रहते हैं।" उसकी मित्रता अच्छे और संस्कारी बालकों से थी और उन्हें पत्र भी लिखता था।

उसके पिता ने समझा दिया था कि बाजार या होटल की चीजें नहीं खानी चाहिए। एक बार ऐसा ही मौका आ गया। उसके पिता अपने दो-एक मित्रों के साथ नागपुर गये हुए थे। उससे बहुत आग्रह किया गया, किन्तु उसने होटल की कोई वस्तु नहीं खाई। इसी तरह पटाखे आदि भी वह नहीं उड़ाता था।

एक बार महारोगी सेवा-मण्डल के व्यवस्थापक श्री मनोहर-जी ने उसके पिता से कोढ़ के संसर्ग आदि पर कुछ चर्चा की थी। उसे वह समझ गया और मौका आने पर एक सज्जन से उसने मोटर से उतरते ही कह दिया कि अपने बच्चों को नंगे पैर अन्दर मत ले चलिए। उसकी अवस्थागत इस समझदारी पर सब अचरज करने लगे।

माता-पिता पर उसकी असीम भक्ति थी। उनकी आज्ञा के बिना वह कोई काम नहीं करता था। सिनेमा भी वह चाहे-जैसा नहीं देखता था। माता-पिता के पैर दबाने, मालिश करने, उन्हें तकलीफ न होने देने में उसे आनन्द आता था। फिजूलखर्ची से उसे नफरत थी। घर में जब कभी फिजूल-खर्ची होती तो उसे बड़ा दुख होता। उसका आहार भी बड़ा सात्विक और संयत था।

वह गाय और बछड़ों पर बहुत प्यार करता था। एक बछड़े का तो नाम ही, उसने अपने अनुरूप 'राजा' रख दिया। मृत्यु के दो घंटे पूर्व उसने उसको याद की थी।

राजनीति की मोटी-मोटी बातें उसे मालूम थीं। वह अख-बार पढ़ता रहता था। बापू की हत्या से उसे बड़ा दुख हुआ था।

लेकिन ऐसे होनहार, सुशील और सुकुमार-मति बालक के इतनी अल्पायु में चल देना है, यह कल्पना किसने की थी ! पि अपनी जिम्मेदारी को सोच ही रहे थे और उसकी प्रगति के साधन को जुटा ही रहे थे कि वह तो अनहोनी कर गया !

आठ—केवल आठ—दिन की अत्यल्प बीमारी में उस किसी को सेवा का मौका भी नहीं दिया ! बीमारी में भी उस जिस धीरज, शान्ति और नियमितता का परिचय दिया, आज उसकी स्मृति धुंधली नहीं हो सकी है, न हो सकती है।

जीते-जी जिसे नहीं पहचाना जा सका, मृत्यु ने उस भीतरी प्रकाश को प्रकट कर दिया। शायद पिछले जन्म का अपूर्ण-योगी, सिद्ध का पर्या होगा, जो यहाँ आया, निर्लिप्त रहा। योग में रम, व्यवहार में सावधानी का वह सजीव उदाहरण था।

जब तक वह जीया मु-पुत्र की तरह करता रहा, और जाते समय अपने माता- संसार के बच्चों को अपना समझने का

वह १ सितम्बर ४८ को देह विश्वात्मा में व्याप्त हो गया। वह उसका चिरन्तन स्थान हो सकता होकर परिवार को अपनी मृत्यु गया। क्या इस अर्थ में वह गुरु

ऐसे बालक-

: १ :

भगवान् ऋषभदेव

प्यारे राजा बेटा,

आज मैं तुम्हें भगवान् ऋषभदेव की कहानी लिख रहा हूँ। ये कितने वर्षों पहले हुए, इस बारे में इतिहास से कुछ भी पता नहीं चलता। वेद तीन हजार वर्ष प्राचीन माने जाते हैं। उनमें इनका नाम आया है। कुछ वर्षों पहले सिंध में खुदाई हुई थी। वहाँ की मिली सामग्री ५-६ हजार वर्ष पहले की बताई जाती है। उसमें जो सिक्के मिले हैं, उन पर भी ऋषभदेव का चिह्न बैल और मूर्ति पाई गई है। जो हो, माना यह जाता है कि ये सबसे पहले पुरुष थे जिन्होंने देश को कर्म और पुरुषार्थ का ज्ञान कराया। ऋषभदेवजी जैनों के प्रथम तीर्थंकर और हिन्दुओंके आठवें अवतार माने गए हैं। इनकी माता का नाम मरुदेवी और पिता का नाम नाभिराय था। ऋषभदेव को आदिनाथ भी कहते हैं। इसका यह मतलब है कि वे सबसे पहले कर्म-पुरुष हुए हैं।

ऋषभदेवजी के समय तक इस देश को भोग-भूमि कहा जाता था। यह अत्यन्त प्राचीन काल की बात है। उस समय न तो कोई समाज-व्यवस्था थी, न मानव-जीवन का कोई आदर्श था। लोग वृक्षों के नीचे रहते और सहज रूपसे बिना प्रयत्न के जो भी फल-फूल मिल जाते उनसे अपना जीवन-निर्वाह करते। बहन-भाई में विवाह होता था। कहते हैं उस समय युगलिया पैदा हो

यानी माताके पेटसे बहन-भाई साथ पैदा होते थे। उस समय न शिक्षा थी न काम था। एक तरह का प्राकृतिक जीवन था। खाना पीना और भोग भोगना ही उस समय का जीवन-क्रम था। इसीसे उस समय इस देशको भोग-भूमि कहते थे। पढ़ना-लिखना तथा अन्य कलाओं की बात तो दूर, लोग आग के उपयोग तक से अपरिचित थे।

नई-नई खोजों और आविष्कारों को देख तथा सुनकर जैसे अपने को अचरज होता है और खोज करनेवाले तथा आविष्कार करनेवाले को देखने की इच्छा होती है तथा उसके रूप और कार्य के बारेमें कई कल्पनाएँ होती हैं, उसी तरह उस समय ऋषभदेवजी की नई-नई बातें देखकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ था। आज हमारे लिए जो चीजें बरतना तथा बनाना बहुत सरल और सुगम है, उनका पहले-पहल शोध करने पर समाज में कैसी क्रान्ति मची होगी, इसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते। कुछ वर्षों पहले रेडियो टेलीफोन को देख कर एक देहाती को जो अचरज होता था और उसके मन में बनानेवाले के प्रति आदर पैदा होता था, वही हाल पहले-पहल खाने-पीने की चीजें बनाने, रखने आदि के आविष्कारके समय हुआ होगा।

उस समय लोग जो चीज मिलती वही खा लेते। लेकिन बढ़ती हुई जन-संख्या का काम इस तरह नहीं चल सकता था। इसलिए ऋषभदेवने खेती की शिक्षा दी। अब अनाज पैदा होने लगा। लेकिन कन्द-मूल और फलों की तरह कच्चा अनाज नहीं खाया जा सकता था। इसलिए उन्होंने आग की मदद से पकाने की शिक्षा दी। उस समय आज की तरह दियासलाई या माचिस नहीं थी। उन्होंने पत्थर से आग पैदा करना बताया। खेतीमें काम आनेवाले

औज़ार बनाने की कला सिखाई। आग पैदा करना बताने और आग तैयार कर लेनेसे ही काम नहीं चलता था। अनाज आग में डालने से वह पककर तो तैयार नहीं हो सकता। तब उन्होंने मिट्टी के बर्तन बनाना सिखाया। इस तरह मिट्टी के बर्तन बनने लगे। मिट्टीके बर्तन बनाने तथा उनसे उपयोग की कला बताने के कारण उन्हें प्रजापति कहा जाने लगा। जानते हो, प्रजापति किसे कहते हैं? प्रजापति कुम्हार को कहते हैं। अपने यहाँ अभी भी यह प्रथा है कि विवाह के अवसर पर कुम्हार को आदर से याद किया जाता और उसके नये बर्तन खरीद कर पूजा की जाती है। व्यवस्थित जीवन बर्तनों से ही प्रारंभ होता है।

खेती के लिए बैल से बढ़कर उपयोगी पशु कोई नहीं होता। इसलिए सोच-विचार कर उन्होंने खेती के लिए बैल को चुना और लोगों को गो-पालन का महत्त्व बताया। उनके नाममें जो 'ऋषभ' शब्द है, उसका अर्थ भी बैल होता है। वे सचमुच बैलोंके स्वामी थे। इसलिए उनका चिह्न भी तो बैल ही है।

लोगों को जंगलके हिंसक जानवरों से रक्षा करने में बहुत कठिनाई होती थी। हमेशा उनका जीवन भयभीत और शंकित रहता था। इसलिए ऋषभदेव ने रक्षा के लिए हथियारों अथवा शस्त्रों के बनाने और उनके उपयोग की शिक्षा दी। मकान और गाँव बसाना तथा रहना सिखाया। कहा जाता है कि अयोध्या नगरी उन्हीं की बसाई हुई थी।

केवल शरीर के पोषण और रक्षण में ही जीवन की सार्थकता नहीं है। वे जानते थे कि मानव के विकास और आपसी मेल-

यानी माताके पेटसे बहन-भाई साथ पैदा होते थे। उस समय न शिक्षा थी न काम था। एक तरह का प्राकृतिक जीवन था। खाना, पीना और भोग भोगना ही उस समय का जीवन-क्रम था। इसीसे उस समय इस देशको भोग-भूमि कहते थे। पढ़ना-लिखना तथा अन्य कलाओं की बात तो दूर, लोग आग के उपयोग तक से अपरिचित थे।

नई-नई खोजों और आविष्कारों को देख तथा सुनकर जैसे अपने को अचरज होता है और खोज करनेवाले तथा आविष्कार करनेवाले को देखने की इच्छा होती है तथा उसके रूप और कार्य के बारेमें कई कल्पनाएँ होती हैं, उसी तरह उस समय ऋषभदेवजी की नई-नई बातें देखकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ था। आज हमारे लिए जो चीजें बरतना तथा बनाना बहुत सरल और सुगम है, उनका पहले-पहल शोध करने पर समाज में कैसी क्रान्ति मची होगी, इसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते। कुछ वर्षों पहले रेडियो टेलीफोन को देख कर एक देहाती को जो अचरज होता था और उसके मन में बनानेवाले के प्रति आदर पैदा होता था, वही हाल पहले-पहल खाने-पीने की चीजें बनाने, रखने आदि के आविष्कारके समय हुआ होगा।

उस समय लोग जो चीज मिलती वही खा लेते। लेकिन बढ़ती हुई जन-संख्या का काम इस तरह नहीं चल सकता था। इसलिए ऋषभदेवने खेती की शिक्षा दी। अब अनाज पैदा होने लगा। लेकिन कद-मूल और फलों की तरह कच्चा अनाज नहीं खाया जा सकता था। इसलिए उन्होंने आग की मदद से पकाने की शिक्षा दी। उस समय आज की तरह दियासलाई या माचिस नहीं थी। उन्होंने पत्थर से आग पैदा करना बताया। खेतीमें काम आनेवाले

गृहस्थी में ही फँसे रहने और उसीमें लीन हो जाने से आत्मा की उन्नति कठिन हो जाती है।

देखो न, अपने बापू भी तो ऐसा ही करते रहे हैं। सेव अं काल भले ही बदल गये हों, लेकिन भावना तो यही रही कि अच्छे कामों में भी आसक्ति नहीं रखना चाहिए। अफ्रीका से भार लौटने पर उन्होंने साबरमतीमें अपना आश्रम स्थापित किया। व कितना फला-फूला इसे सन् १६३० के पहले देखनेवाले जानते हैं लेकिन उसे त्याग कर वे सेवाग्राम आ गए।

महापुरुषों के जीवन में एक खास विशेषता होती है। वह य कि वे कभी बुरे काम करते ही नहीं, बल्कि अच्छे कामों में भी मे नहीं रखते। उनसे चिपटकर नहीं बैठते। योग्य समय आने उनको भी त्याग देते हैं। और इस तरह वे अपना इतना विका कर लेते हैं कि वे अपने-आप में ही सच्चे सुख का अनुभव क हैं। उन्हें बाहरी किसी चीज या साधन की जरूरत नहीं होते यही पूर्णता है। यह प्राप्त होने पर आत्मा परमात्मा बन जाता है ऐसी पूर्णता पा जब वे लोगों को मार्ग बताते हैं, ज्ञान देते हैं, त लोग उन्हें तीर्थंकर या अवतार कहते हैं। संसार में ऐसे महापु बुराइयाँ दूर करने के लिए आते हैं।

यह पत्र कुछ कठिन हो गया है। समझने की कोशिश करो तो कोई कठिनाई नहीं होगी। प्रयत्न करो।

—रिषभदास के प्य

: २ :

भगवान् नेमिनाथ

प्यारे राजा बेटा,

तुमने भगवान् श्रीकृष्ण का नाम तो सुना ही है। आज उन्हींके समय के एक महान् ब्रह्मचारी और चचेरे भाई भगवान् नेमिनाथ की कथा लिख रहा हूँ। यह करीब ५ हजार वर्ष पहले की बात है। इस समय बाहर से आए हुए आर्य लोग यहाँ बस गए थे और उनका भारत के मूल-निवासियों या आदिवासियों के साथ सम्बंध स्थापित हो गया था। जिनमें पारस्परिक विवाह आदि होने लगे थे।

आर्य गोरे थे और आदिवासी काले। आर्य लोग विविध देशों का प्रवास करते हुए यहाँ आए थे। प्रवास काल में उनका अनेक लोगों से सम्पर्क आया था। इससे उन्हें देश-देशांतरों की विविध बातें सीखने को मिली थीं। लेकिन यहाँ के मूल-निवासी भी कोई असभ्य नहीं थे। इनके भी बड़े-बड़े शहर थे। भारतीयों की प्राचीन सभ्यता के चिह्न हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई में मिले हैं। इससे पता लगता है कि यहाँ के लोग भी सभ्य थे।

यहाँ के लोग खेती करते थे। इसके लिए उनका प्यारा साथी गो-वंश था। लेकिन आर्य लोग प्रायः मांसाहारी थे। इनके

गृहस्थी में ही फँसे रहने और उसीमें लीन हो जाने से आत्मा की उन्नति कठिन हो जाती है।

देखो न, अपने बापू भी तो ऐसा ही करते रहे हैं। क्षेत्र और काल भले ही बदल गये हों, लेकिन भावना तो यही रही कि अच्छे कामों में भी आसक्ति नहीं रखना चाहिए। अफ्रीका से भारत लौटने पर उन्होंने साबरमतीमें अपना आश्रम स्थापित किया। वह कितना फला-फूला इसे सन् १६३० के पहले देखनेवाले जानते हैं लेकिन उसे त्याग कर वे सेवाग्राम आ गए।

महापुरुषों के जीवन में एक खास विशेषता होती है। वह यह कि वे कभी बुरे काम करते ही नहीं, बल्कि अच्छे कामों में भी मोह नहीं रखते। उनसे चिपटकर नहीं बैठते। योग्य समय आने पर उनको भी त्याग देते हैं। और इस तरह वे अपना इतना विकास कर लेते हैं कि वे अपने-आप में ही सच्चे सुख का अनुभव करते हैं। उन्हें बाहरी किसी चीज या साधन की जरूरत नहीं होती। यही पूर्णता है। यह प्राप्त होने पर आत्मा परमात्मा बन जाता है। ऐसी पूर्णता का जब वे लोगों को मार्ग बताते हैं, ज्ञान देते हैं, तब लोग उन्हें तीर्थंकर या अवतार कहते हैं। संसार में ऐसे महापुरुष बुराइयाँ दूर करने के लिए आते हैं।

यह पत्र कुछ कठिन हो गया है। समझने की कोशिश करोगे तो कोई कठिनाई नहीं होगी। प्रयत्न करो।

—शिवदास के प्यार

: २ :

भगवान् नेमिनाथ

प्यारे राजा बेटा,

तुमने भगवान् श्रीकृष्ण का नाम तो सुना ही है। आज उन्हींके समय के एक महान् ब्रह्मचारी और चचेरे भाई भगवान् नेमिनाथ की कथा लिख रहा हूँ। यह करीब ५ हजार वर्ष पहले की बात है। इस समय बाहर से आए हुए आर्य लोग यहाँ बस गए थे और उनका भारत के मूल-निवासियों या आदिवासियों के साथ सम्बंध स्थापित हो गया था। जिनमें पारस्परिक विवाह आदि होने लगे थे।

आर्य गोरे थे और आदिवासी काले। आर्य लोग विविध देशों का प्रवास करते हुए यहाँ आए थे। प्रवास काल में उनका अनेक लोगों से सम्पर्क आया था। इससे उन्हें देश-देशांतरों की विविध बातें सीखने को मिली थीं। लेकिन यहाँ के मूल-निवासी भी कोई असभ्य नहीं थे। इनके भी बड़े-बड़े शहर थे। भारतीयों की प्राचीन सभ्यता के चिह्न हड़प्पा और मोहेनजोदड़ो की खुदाई में मिले हैं। इससे पता लगता है कि यहाँ के लोग भी सभ्य थे।

यहाँ के लोग खेती करते थे। इसके लिए उनका प्यारा साथी गो-वंश था। लेकिन आर्य लोग प्राय: मांसाहारी थे। इनके

लिए गो-वंश का उतना महत्त्व नहीं था। आर्य लोग बाहर से आ थे और आदिवासियों पर सत्ता स्थापित करना चाहते थे। इ लिए कुछ समय तक दोनों मे संघर्ष चला, लेकिन फिर धीरे-धी दोनों में समन्वय होने लगा। वे भी गो-वंश के महत्त्व को समझ लगे। आर्यों में उत्साह था, आदिवासियों में विचार; जिसका आ चलकर समन्वय हुआ।

यहाँ के आदिवासियों की मान्यता थी कि मनुष्य को जं भी सुख-दुख भोगना पड़ता है, वह सब उसके किए हुए कर्मों क परिणाम ही होता है। अच्छे कार्य का अच्छा और बुरे का बु परिणाम भोगना ही पड़ता है। ये कर्म और परिणाम किसी ए ही जन्म के नहीं, बल्कि पहले के और आने वाले कई जन्मों के भ हो सकते हैं अर्थात् आदिवासी यानी यहाँ के लोग पुनर्जन्म क मानते थे और आत्म-विश्वास के लिए तपस्या करते थे। उन्हें श्रम कहा जाता था।

आर्य लोग प्रकृति-पूजक थे। उनका बलिदान, मांसाहा और देवों को नैवेद्य समर्पण आदि में विश्वास था। आदिवासिय की संगति से इनमें भी परिवर्तन हुआ और यज्ञ में होनेवाल पशु-हिंसा बंद हो चली। दोनों के मेल-जोल से एक ऐसी कर्म औ विचार-परम्परा सामने आई जिसे श्रीकृष्ण ने प्रारम्भ करके कर्म-योग नाम दिया। यों कहें कि आदिवासियों ... आर्यों के शब्दों में भर ... गई। परिश्रम करना, निष्काम ... करना यज्ञ कहलाने लगा और उसमें से पशु हिंसा का ... गया

एक साथ नहीं चल सकते। विचार करने पर उन्हें मालूम हुआ कि एक पत्नी-व्रत से ही समाजका कल्याण होगा। इससे आदमी को आत्म-चिन्तन का अवसर मिलेगा और लोग कर्त्तव्य-शील बन सकेंगे। स्वयं अपने बारेमें तो उनका विचार था कि वे अविवाहित ही रहेंगे।

भगवान् नेमिनाथ ने इसके अतिरिक्त एक बहुत बड़ा काम और किया था। यद्यपि यज्ञ में पशु-बलि हेय या निम्न मानी जाने लगी थी, तथापि भोजन में मांस का सेवन प्रचलित था। मांस खाने का रिवाज यद नहीं हो सका था। इसे चालू रखने में राजकुल के लोगों तथा क्षत्रिय लोगो का बड़ा हाथ था। ये लोग ऐश-आरामी और बिना परिश्रम के जीवन बितानेवाले थे। इस कार्य को बुराई और पाप की दृष्टि से देखनेवाले श्रीकृष्ण और नेमिनाथ थे। इन्होंने भरसक प्रयत्न किया कि किसी भी तरह यह रिवाज दूर हो और लोग कृषि करके, परिश्रम करके निरामिष-आहार द्वारा जीवन बिताएँ।

लेकिन तुम जानते हो, बुराई को दूर करने के लिए बहुत बड़ा त्याग करना पड़ता है। कभी-कभी तो जान पर भी खेलना पड़ता है। जो जनता के सच्चे हितैषी होते हैं, जो जन-सेवा को अपना श्रेष्ठ व्रत समझते हैं, वे अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी परोपकार के कार्य कर जाते हैं। तो, मांसाहार की बुराई या पाप से जनता को मुक्त करने में यादव-कुलके इन दो महारथियों ने बहुत बड़ा त्याग और कार्य किया।

मांसका सेवन लोग शरीर स्वास्थ्य के लिए करते थे। यादव-कुल में मांस के प्रति [illegible] था। [illegible] इन्होंने प्रयोग करके

सिद्ध किया कि मांस से भी अधिक शक्ति दूध में है। गो-पालन द्वारा उन्होंने दूध, गाय, कृषि, परिश्रम और मेल-जोल का महत्त्व प्रजा के सामने रखा। यादव लोग क्षत्रिय थे; किन्तु जन-हितकारी समझकर वैश्योंके इस गो-पालन उद्योग को भी उन्होंने अपनाया।

तुम अचरज में होगे कि आज यह कैसी कहानी पढ़ रहा हूँ कि भगवान् नेमिनाथ का तो परिचय ही नहीं आ रहा है। ऊपर जिन दो बुराइयों का उल्लेख किया है—एक तो एक आदमी का कई स्त्रियोंसे विवाह करना और दूसरे मांसाहार—उनके विरुद्ध नेमिनाथ ने अपने जीवन का क्या उपयोग किया, यह नीचेकी उनके जीवन की घटना से मालूम होगा।

भगवान् नेमिनाथ के पिता का नाम समुद्रविजय था। ये बचपन से ही बहुत बुद्धिमान् और बलशाली थे। श्रीकृष्ण इनके चचेरे भाई थे। इनका कुल यादव-कुल कहलाता था। इनके कुल में प्रायः सभी लोग सच्चरित्र और विद्वान् हुए हैं। श्रीकृष्ण तो बचपन में जरा नटखट थे, विनोदी और खिलाड़ी थे, लेकिन नेमिनाथ हमेशा कुछ-न-कुछ सोचा करते थे। ये सदा गंभीर और विचार मग्न रहते थे।

समय आगे बढ़ता जा रहा था और श्री नेमिकुमार भी अब तरुण हो चले थे। परिवार में विवाह की चर्चा चलने पर उन्होंने विवाह करने से इनकार कर दिया। लेकिन तुम जानते हो, अकेले आदमी की इच्छा संसार में ज्यादा काम नहीं आती। घरके

बड़े-बूढ़ों की इच्छा अपने बेटों को विवाहित देखने की होती है। उस समय यादव-कुलमें श्रीकृष्ण बड़े चतुर और प्रमुख थे उन्होंने खबर पाते ही उन्हें विवाह के लिए तैयार करने की अनेक युक्तियाँ सोच निकालीं। पहले तो श्रीकृष्ण ने काफी समझाया लेकिन जब नेमिनाथ नहीं ही माने तब उन्होंने अपनी रानियों के उद्यान में वसन्तोत्सव मनाने का आदेश किया और कहा कि उसमें नेमिकुमार को ले जाकर रिझाया जाय और विवाह को तैयार किया जाय।

उपवन की पुष्करिणी में भाभियों ने नेमिनाथ को घेर लिया और नाना तरह से उन्हें विवाह के लिए राजी करने के लिए कहने लगीं। लेकिन नेमिनाथ बिलकुल मौन रहे। भाभियों के हास्य आमोदपर केवल मुसकराते रहे। इधर इन्होंने इस मुसकराहट को नेमिनाथ की स्वीकृति समझ लिया। अब कन्या की शोध की गई।

राजा उग्रसेन की कन्या राजुलमती से उनका विवाह निश्चित हुआ। राजुलकुमारी पढ़ी-लिखी और बुद्धिमती कन्या थी। नेमिनाथ के प्रति उसका सहज आकर्षण था। वह भी योग्य वर पा अपने मन में प्रसन्न थी।

योग्य मुहूर्त पर बारात निकली। यादव-कुल की बारात थी और संचालक थे श्रीकृष्ण। बारात खूब अच्छी तरह सजाई गई थी। अनेक राजागण इसमें सम्मिलित हुए थे। उधर बारात के स्वागत-सत्कार के लिए राजा उग्रसेन ने भी बहुत तैयारियाँ की थीं। उस समय मांसाहार का प्रचार तो था ही बारात के सैकड़ों लोगोंके

आतिथ्य-सत्कार के लिए कई पशु एक बाड़े में बंद कर दिए गए थे। उस समय मांसाहार की मेजमानी एक तरह की शान समझी जाती थी। जब उस बाड़े के नजदीक से नेमिकुँवर का रथ निकला तब पशुओं का करुण-रोदन सुनकर उन्होंने अपने सारथी से पूछा कि "ये सब पशु यहाँ क्यों जमा किए गए हैं?"

'कुमार, बारात की मेजमानी के लिए यहाँ जमा किए गए हैं!'

सुनकर नेमिकुमार का दया-पूर्ण हृदय करुणा से भर आया। उनकी आँखें डबडबा आईं। उनसे उन मूक पशुओं की चीत्कार सुनी नहीं गई। उन्होंने तत्काल अपने सारथी से कहा "रथ वापस लौटाओ। मैं आगे नहीं बढ़ूँगा। मेरे लिए इन सैकड़ों पशुओं का विनाश! नहीं, यह नहीं हो सकता।"

अब नेमिनाथ मुड़ चले सो मुड़ ही चले। परिवार के लोगों ने, बारातियों ने और राजा उग्रसेन ने भी बहुत समझाया और एक-पर-एक आश्वासन दिये कि सब बारातियों के लिए निरामिष भोजन ही बनेगा। विवाह कर लीजिए। लेकिन नेमिनाथ तो लोगों को शिक्षा देना चाहते थे। वे सारे क्षत्रियों की आँखें खोलना चाहते थे। केवल इसी बार पशुओं की रक्षा करके क्षत्रिय थोड़े ही अपने रिवाज से अलग करनेवाले थे। नेमिनाथ तो चाहते थे कि आगे से यह प्रथा ही नष्ट हो जाय। 'अपने लिए कोई विरोध करना ही सबकी आँखें खोल सकता है।' नेमिनाथ लौटे और गिरनार पर्वत पर चढ़ गए [illegible]

[illegible]

साधना में एक बड़ा तत्त्व यह था कि नेमिनाथ जहाँ भी भोजन के लिए जाते, वहाँ निरामिष भोजन आवश्यक होता। अिस तरह जहाँ-जहाँ भी गए, वहाँ का वातावरण निरामिष होता गया।

श्रीकृष्ण ज्ञानी थे। वे नेमिकुमार के मन की बात ताड़ गए। उन्होंने अपने यादव-बन्धुओं को नेमिकुमार की साधना की बात समझाई। यादवों ने नेमिकुमार की दीक्षा का महोत्सव किया। अब नेमिकुमार संसार त्याग कर आत्म-साधना में लग गए और आत्म-ज्ञान प्राप्त कर जनता को सत्पथ बतलाया। बहुविवाह और मांसाहार के विरुद्ध विचार फैलाने में उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इसीलिए उन्हें तीर्थंकर कहा गया। तीर्थंकर यानी धर्म का मार्ग बतानेवाले महापुरुष। वे गुजरात, काठियावाड़ यानी सौराष्ट्र में ही विचरण करते रहे और अन्त में गिरनार पर्वत पर ही उनका निर्वाण हुआ। गिरनार पर्वत पर जैनों के और दूसरे लोगों के भी सुन्दर-सुन्दर मंदिर हैं।

हिन्दुस्तान के दूसरे भागों की अपेक्षा गुजरात और काठियावाड़ में अभी भी अधिकतर लोग निरामिषभोजी और शांति-प्रिय हैं। यह सब भगवान नेमिनाथ के प्रभाव का परिणाम है। इस भावना को बढ़ाने वाले समय-समय पर और भी कई राजा और साधु हो गए हैं। सम्राट कुमारपाल और हेमचंद्राचार्य का नाम इस विषय में उल्लेखनीय है।

जब नेमिकुमार गिरनार पर चढ़ गए तब राजुलमती ने भी उसी मार्ग का अनुसरण किया। उसे अनेक तरह से समझाया गया कि अभी तो उसका विवाह भी नहीं हुआ है, किसी दूसरे राज

: ३ :

भगवान् श्रीकृष्ण

प्यारे राजा बेटा,

तुमने भगवान श्रीकृष्ण की बहुत बातें सुनी हैं। आज उन के बारे में कुछ लिख रहा हूं।

श्रीकृष्ण का जन्म मथुरा के जेल में हुआ था। मथुरा में उस समय कंस का राज्य था। वह श्रीकृष्ण का मामा था और बड़ा दुष्ट तथा अन्याचारी भी। कंस अपने पिता को गद्दी से उतारकर खुद गद्दी पर बैठ गया और प्रजा पर तरह-तरह के अत्याचार करने लगा। अपनी बहन देवकी और बहनोई वसुदेव को भी उसने जेल में बन्द कर दिया। जिस दिन श्रीकृष्ण का जन्म हुआ, उस दि अष्टमी थी। दक्षिण तथा गुजरातवाले इसे सावन बदी कहते हैं और उत्तरवाले भादों बदी। यह एक मास का अन्तर कहने भर का है। इसे सब समझते हैं, इसलिए तिथि सम्बन्धी कोई अड़चन नहीं होती। दक्षिणवाले महीने की शुरूआत सुदी यानी शुक्ल-पक्ष से मानते हैं और उत्तरवाले बदी यानी कृष्ण पक्ष से। शुक्ल-पक्ष सा का एक ही होता है, तो भादों बदी या सावन बदी अष्टमी को कृष्णाष्टमी कहते हैं। तुम देखते हो न कि इस कृष्णाष्टमी को जगह जगह कितना उत्सव मनाया जाता है। अपने-अपने बच्चों की वर्ष-गांठ तो कई माता-पिता मनाते हैं, लेकिन ऐसे बहुत ही क

जमुना नदी तथा प्राचीन धार्मिक परम्परा के कारण मथुरा आ
भी धर्म-क्षेत्र के रूप में पूजा जाता है। शहर में जमुना के घाट
बहुत बड़े-बड़े वैष्णव मन्दिर हैं।

बचपन में श्रीकृष्ण बड़े नटखट थे। उन्हें दूध, दही त
मक्खन खाने में बड़ा मजा आता था। खेलने-खेलने वे जिस
वहाँ भी चले जाते, मक्खन खानेको तैयार रहते थे। इ
लिए वे शक्तिशाली भी थे। बड़े-बड़े साहस के काम करने में
नहीं घबराते थे। दरअसल में गोरस पृथ्वी का अमृत है
कृष्ण मक्खन अकेले नहीं खाते थे, सब ग्वाल-बालों को
खिलाते थे।

कुछ बड़े होते ही वे अपने ग्वाल साथियों के साथ वृन्दा
के जंगलों में गाएँ चराने जाने लगे थे। गाय से उन्हें ब
प्रेम था। गायों का दुहना, बाँधना, खोलना, उनके आगे घ
डालना, नहलाना वे स्वयं किया करते थे। तुम पूछोगे कि यह क
तो वे अपने नौकर-चाकरों से भी करवा सकते थे, इतना ढ
काम इन्होंने क्यों किया ?

नहीं, यह बात नहीं है। वे बड़े बुद्धिमान् थे। आज
हम किसी मूर्ख पर चिढ़कर कह देते हैं कि अगर नहीं पढ़ोगे
गाएँ चराना पड़ेगा, वैसे उनके बारेमें नहीं कह सकते। उस समय म
खाने का बहुत रिवाज था। खाने लिए दूसर प्राणियों को मार
उनके मांस से पेट भरना महान पाप है क्योंकि दूसर प्राणियों
भी अपनी तरह जीव होता है। इन्होंने सोचा कि गाय ऐसा

कंस बहुत घबराया। उसे शंका होने लगी कि कहीं यह लोगों की सहायता से मुझे पराजित न कर दे। कंस ने किसी उपाय से कृष्ण को मरवा डालने का विचार किया। उसने अपने अक्रूर नामक मल्ल या दूत को भेजकर कृष्ण को बुलाया कि मल्ल-युद्ध में भाग लो। एक-एक करके श्रीकृष्ण ने सब मल्लों को खत्म कर दिया। अब कंस की बारी आई तो कृष्ण ने उसे भी मार डाला। कंस के मरनेपर श्रीकृष्ण ने अपने नाना उग्रसेन को जेल से निकालकर मथुरा का राज्य सौंप दिया। अपने माता-पिता के दर्शन करके श्रीकृष्ण अब मथुरा ही रहने लगे। जब वृन्दावन नहीं लौटे तो वहाँ के सब लोग उनके सखा-साथी, गोपिकाएँ तथा गाएँ आदि बहुत खिन्न और उदास रहने लगे। काम तो जैसे-के-तैसे चलते थे लेकिन सारे ही वन-उपवन सूने-सूने-से दिखाई देने लगे। वृन्दावन के पालन-पोषण करनेवाले श्रीकृष्ण के बिना नन्द और माता यशोदा थीं। यशोदा तो इतनी दुखी हो गईं कि खाना-पीना तक भूल बैठीं। एक बार उनके आग्रहसे नन्द श्रीकृष्ण को लिवानेके लिए मथुरा गए भी, लेकिन कार्य की अधिकता से श्रीकृष्ण नहीं आ सके।

कंस के श्वसुर का नाम जरासंध था, जो मगध का सम्राट् था। जब उसे मालूम हुआ कि उसका जंवाई कंस मारा गया है तब मथुरा पर उसने चढ़ाई कर दी। श्रीकृष्ण ने उसे पराजित तो कर दिया लेकिन वह बार बार बड़ी सेनाएँ भेजकर श्रीकृष्ण को परेशान करने लगा [illegible] श्रीकृष्ण से तंग आ गया तो उसने [illegible] राजा की सहायता [illegible] बार से श्रीकृष्ण

कौरवों और पाण्डवों में जब भयंकर लड़ाई हुई तब कौर
की ओर से दुर्योधन और पाण्डवों की ओर से अर्जुन श्रीकृ
पास मदद के लिए पहुँचे। सारी स्थिति का विचार कर उन्
पाण्डवों का ही साथ दिया। यह लड़ाई बहुत भयानक थी।
महाभारत कहा गया है। १७ या १८ दिन के इस महाभार
हजारों योद्धा वीर-गति को प्राप्त हुए। यह युद्ध कुरुक्षेत्र में हुआ
जो आजकल दिल्ली-इन्द्रप्रस्थ के पास है। लड़ाई शुरू होने के
दोनों ओर की सेना को देखकर और अपने विरोधी पक्ष की त
भी अपने ही भाइयों तथा गुरु जनों को देखकर अर्जुन के मन
मोह पैदा हो गया कि क्या यह लड़ाई ठीक है? अपने ही भाई
परिजनों को मारना कोई वीरता नहीं है। अर्जुन की यह हा
देखकर श्रीकृष्ण ने जो उपदेश दिया वह 'गीता' के नाम से प्रसि
है। गीता के उपदेश में श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्मयोग की शिक्षा
है। गांधीजी ने इसे 'अनासक्ति योग' कहा है। दोनों का अर्थ
ही है। उनके उपदेश का सार यह है कि दुनिया में कोई भी अ
काम छोटा या बड़ा नहीं है। किसी भी काम में राग, द्वेष
अहकार की भावना नहीं रखनी चाहिए। हमेशा अच्छे काम
रहना चाहिए। लेकिन उसके साथ किसी तरह का स्वार्थ
आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। यह उनके आचरण से प्रकट होता
क उन्होंने गायें चराई, जूठी पत्तलें उठाई, घोड़े का खरहरा कि
और बताया कि छोटा काम करने से कोई छोटा नहीं होता
स्वार्थ के लिए या अज्ञानवश दूसरों को कष्ट देने से आदमी नीच
छोटा होता है।

बड़े होने पर, जब महाभारत तथा हिन्दी कवियों के पढ़ोगे, तब तुम्हें नई-नई बातें जानने को मिलेंगी। आज इ ही काफी है।

श्रीकृष्ण सचमुच कर्म-पुरुष थे। जैन मान्यतानुसा नारायण थे। आगे जाकर वे तीर्थंकर होंगे। हिन्दुओं के वे अ माने जाते हैं। इस तरह वे सब के पूज्य हैं।

—रिषभदास के प्या

बड़े होने पर, जब महाभारत तथा हिन्दी कवियों के ग्र
पढ़ोगे, तब तुम्हें नई-नई बातें जानने को मिलेंगी। आज इत
ही काफी है।

श्रीकृष्ण सचमुच कर्म-पुरुष थे। जैन मान्यतानुसार
नारायण थे। आगे जाकर वे तीर्थंकर होंगे। हिन्दुओं के वे अवत
माने जाते हैं। अिस तरह वे सब के पूज्य हैं।

—रिषभदास के प्

कहानी में मैं तुम्हें युधिष्ठिर के सम्बन्ध में ही कुछ बतलाऊँगा। इससे तुम जान सकोगे कि युधिष्ठिर कितने ऊँचे धर्मराज थे।

बचपन में बालक जिन संस्कारों में पलता और बढ़ता है बड़ा होने पर वे ही संस्कार-बीज उनके व्यवहार में उतरते हैं। खेती में भी तुम देखते हो कि जैसा बीज बोया जाता है, मिट्टी, हवा, पानी का संयोग पाकर वह वैसा ही फल देता है। पपीते और करेले के बीज एक ही जमीन में और एक ही समय बोने पर और तथा समान रूप से हवा-पानी मिलने पर भी पपीते का फल मीठा और करेले का कड़ुवा होता है। इसी तरह जिनमें सद्गुणों के बीज होते हैं वे समय आने पर सद्गुण ही बनाते हैं और दुष्ट दुष्टता ही बनाते हैं। कौरव १०० भाई थे। सबसे बड़े का नाम सुयोधन था। युधिष्ठिर और सुयोधन की पढ़ाई एक ही गुरु श्री द्रोणाचार्य के निकट हुई थी। भीष्म, विदुर, कृष्ण आदि ज्ञानी और श्रेष्ठ पुरुषों की संगति भी समान रूप से इन्हें मिली थी, लेकिन युधिष्ठिर और सुयोधन के जीवन में जमीन-आसमान का अन्तर था। युधिष्ठिर धर्मराज कहलाए और सुयोधन दुर्योधन।

युधिष्ठिर जब पढ़ने योग्य हुए तब उन्हें गुरु द्रोणाचार्य के आश्रम में भेजा गया। उस समय आज-जैसी स्कूलें नहीं थीं। तब तो छात्रों को जंगलवासी ऋषि-मुनियों के पास जाकर विद्याध्ययन करना पड़ता था। वहाँ बालकों को कठोर [illegible] पढ़ाई जाती थी। [illegible] छात्र थे वे गुरु के पास बड़ी [illegible] और [illegible] आदि दूसरे [illegible]
[illegible]

"तो फिर इन सबने कैसे याद कर लिया ?"

"दूसरों की बात मैं नहीं जानता गुरुजी ! लेकिन आज पढ़ा हुआ पाठ जीवन में उतारने के लिए है, और यही कठिन का है।"

यह उत्तर सुनकर गुरु समझ गए कि युधिष्ठिर कितना समझदार छात्र है। वे बहुत प्रसन्न हुए। पहले तो सब छात्र युधिष्ठिर मौन पर हँसने लगे। लेकिन उस उत्तर से वे भी अचरज में पड़ ग

यही बात थी कि युधिष्ठिर की सत्यता जीवन की चीज़ ब गई। लोग उनकी बात को मानने लगे। वे अपने जीवन में अस से बचे रहे। यही कारण है कि युधिष्ठिर का नाम लेते ही 'सत्य' स्मरण हो आता है। इस से यह शिक्षा मिलती है कि हम जो सीखें-पढ़ें या करें, वह केवल बाहरी दिखावा या किताबी ज्ञान नहीं होना चाहिए। हम जो बोलें, उसे पहले जीवन में उतार लें ही उस बोलने की प्रतिष्ठा हो सकती है। हम लोग सत्य की बातें तो बढ़-बढ़ कर करते हैं, लेकिन झूठ भी कम नहीं बोलते। जिनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं होता, उन छोटी-छोटी बातों में भी झूठ बोला करते हैं। इस आदत से सबको बचना चाहिए। जिसके बारे में लोग यह समझ लेते हैं कि यह झूठ ही बोलता है तो फिर कभी सत्य बोलने पर भी उसका विश्वास नहीं करते। झूठ की आदत पड़ने से सच बोलने में मुश्किल मालूम होती है, लेकिन सच बोलना ही ज्यादा आसान है। जो बात जैसी हो, उसे वैसी कहने की अपेक्षा बनाकर कहना ही ज्यादा कठिन है।

हाँ, तो द्रौपदी का स्वयंवर था। राजा द्रुपद की शर्त थी नीचे देखते हुए, यंत्र के ऊपर टँगे हुए कपड़े को जो अपने बाण बेध सकेगा, उसी के साथ द्रौपदी का विवाह किया जायगा। बहुत से राजा और योद्धा इसमें सफल नहीं हो सके। लेकिन अर्जुन ने घूमते हुए यंत्र को चीर कर वस्त्र गिरा दिया। अर्जुन युधिष्ठिर के छोटे भाई थे और धनुर्विद्या में निष्णात थे।

विवाह करके लौटने पर पाण्डवों को आधा राज्य दे दिया गया। यहाँ वे इन्द्रप्रस्थ नामक नगर बसाकर रहने लगे। वे पाँचों भाई मिलकर रहते थे, इसलिए इनमें साहस बहुत था। इनकी शक्ति के बल पर कई राजाओं को अपने वश में कर लिया। बाद में इन्होंने एक बड़ा भारी राजसूय यज्ञ किया। सचमुच एकता में बहुत शक्ति होती है।

इस यज्ञ में देश-देशान्तरों के अनेक राजा आए थे। श्रीकृष्ण भी इस सभा में थे। वे मनुष्य-हृदय के बड़े पारखी थे। हँसी-हँसी में उन्होंने दुर्योधन से पूछा—

"अच्छा दुर्योधन, यह तो बताओ, इन सब राजाओं में कोई भला आदमी भी है ?"

दुर्योधन को अपने ऊपर बड़ा अभिमान था। वह अपने से अधिक बुद्धिमान, सुन्दर और वीर किसी को नहीं समझता था। उसने झट से उत्तर दिया— 'मुझे तो इनमें कोई भी भला आदमी नहीं दिखाई देता।'

यज्ञ पूरा होने पर मुनि वेदव्यासजी ने युधिष्ठिर से कहा—

"धर्मराज, मैं राजाओं का जो आचार-विचार देख रहा [illegible] उससे तो ऐसा लगता है कि क्षत्रियोंका विनाश-काल निकट है [illegible] आप-जैसे धर्मात्माओं को भी कष्ट सहने पड़ेंगे। यह तो ठीक [illegible] कि आदमी अपने पापों का फल भोगेगा, लेकिन बात यहीं तक न [illegible] रहती। एक आदमी के पाप का असर समाज पर भी होता [illegible] और समाज को भी उसके पाप का फल भोगना पड़ता है। ये क्ष[illegible] लोग जो पाप कर रहे हैं, उससे इनका तो पतन होगा ही, लेकि[illegible] प्रजा को भी कष्ट उठाने पड़ेंगे। क्षत्रिय लोग मदोन्मत्त हो गए [illegible] उनमें अहंकार बढ़ गया है। वे अधर्माचरण करने लगे हैं। यह स[illegible] विनाश के लक्षण हैं। इसे टाला नहीं जा सकता। तुमसे मे[illegible] निवेदन है कि अपनी इन्द्रियों को वश में रखो और लोगों से सा[illegible] धानी से बरतो।"

महर्षि व्यास की बात सुनकर युधिष्ठिर विचारमें पड़ [illegible] व्यासजी ज्ञानी थे। उनकी प्रतिभा और आत्मा इतनी तीव्र [illegible] उज्ज्वल थी कि वे भविष्य की घटनाओं का भी अंदाज लगा [illegible] थे। उनकी बातें सार-पूर्ण होती थीं। इसलिए युधिष्ठिर चुप [illegible] रह सकते थे। वे अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक हो गए। उन्हों[illegible] अपने क्षत्रिय बंधुओं को बचाने के विविध उपाय सोचे। सब[illegible] पहले उन्होंने अपने मन में निश्चय किया कि मैं अपने बंधुओं [illegible] कभी भी बात नहीं करूँगा जिससे आपसी तनाव या [illegible] बढ़े [illegible]। [illegible] को मैं अपने पास तक न

भी पाण्डवों को कष्ट देने में दुर्योधन ने कोई कसर नहीं रखी। पाण्डवों के विनाश के कई प्रयत्न किए, लेकिन वह उनका कुछ भी बिगाड़ न सका। इस वनवास में पाण्डवों को काफी सीखने को मिला। तरह-तरह के अनुभव मिले।

पाण्डव एक जंगल से दूसरे जंगल घूमते ही रहते थे। एक बार उन्हें प्यास लगी। नकुल सरोवर पर जल लेने गए। उस सरोवर पर एक यक्ष रहता था। वह उस सरोवर का मालिक या रक्षक था। वह जिज्ञासु था। उसकी शर्त यह थी कि जो उसके प्रश्नों का उत्तर देगा, वही यहाँ से जल पा सकेगा। नकुल, सहदेव, भीम आदि कोई भी उसके प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सके। आखिर धर्मराज युधिष्ठिर वहाँ पहुँचे। उन्होंने उसके प्रश्नों का बहुत सुन्दर उत्तर दिया। वे प्रश्नोत्तर बहुत ही सारपूर्ण और यथार्थ हैं। वे आज भी हमारे काम के हैं, इसलिए कुछ प्रश्नोत्तर यहाँ लिखता हूँ।

प्रश्न—मनुष्य का कौन सदा साथ देता है ?

उत्तर—धीरज ही मनुष्य का सदा साथ देता है।

प्र०—कौनसा ऐसा शास्त्र (विद्या) है जिसके अध्ययन से मनुष्य बुद्धिमान् बनता है ?

उ०—शास्त्र तो ऐसा कोई भी नहीं है, किन्तु सत्पुरुषों की संगति से ही मनुष्य बुद्धिमान बनता है।

प्र०—भूमि से भी भारी चीज कौन-सी है ?

उ०—माता भूमि से भी भारी है, जो सन्तान को कोख में धरती है।

प्र०—आकाश से भी ऊँचा कौन होता है ?

उ०—पिता आकाश से भी ऊँचा होता है।

प्र०—हवा से भी तेज चाल किसकी है ?

उ०—मन की चाल हवा से भी तेज होती है।

प्र०—घास-फूस से भी तुच्छ क्या है ?

उ०—चिन्ता घास-फूस से भी तुच्छ है।

प्र०—विदेश जानेवाले का मित्र कौन होता है ?

उ०—विदेश जानेवाले का मित्र विद्या ही है।

प्र०—मौत के समय का साथी कौन है ?

उ०—दान मौत के समय का साथी है।

प्र०—सुख कैसे मिलता है ?

उ०—शील और सदाचार से ही सुख मिलता है ?

प्र०—क्या छूटने पर मनुष्य लोक-प्रिय बनता है ?

उ०—अहंकार से पैदा होनेवाले अभिमान के दूर होने पर।

प्र०—क्या नष्ट हो जाने पर दुख नहीं होता ?

उ०—क्रोध के नष्ट हो जाने पर दुख नहीं होता।

प्र०—किस चीज को खोकर मनुष्य धनी बनता है ?

उ०—लालच को खोकर आदमी धनी बनता है।

प्र०—किसी का ब्राह्मण होना किस बात पर निर्भर है ? जन्म पर, शील-स्वभाव पर या विद्या पर ?

उ०—ब्राह्मण होना शील-स्वभाव पर निर्भर है। चाहे कितना ही पढ़ा-लिखा हो और ब्राह्मण कुल में भी जन्मा हो, लेकिन जो दुराचारी है वह ब्राह्मण नहीं कहला सकता

प्र०—संसार में सबसे बड़ा अचरज क्या है ?

उ०—आँखों के सामने कितने ही प्राणियों को मरते देखकर और खुद क्षण-क्षण में मृत्यु के मुँह में जाता हुआ मनुष्य अपने-आपको अमर मानकर कीमती समय व्यर्थ गँवाता रहता है, यही सबसे बड़ा अचरज है।

प्र०—किस मार्ग पर चलने से कल्याण होता है ?

उ०—जिस रास्ते से सत्पुरुष लोग गए हैं, उस पर चलने से कल्याण ही होता है।

प्र०—सच्चा सुखी कौन है ?

उ०—जो किसी का कर्जदार नहीं है, वही सच्चा सुखी है

प्र०—सबसे सुन्दर कथा कौन-सी है ?

उ०—मोह में डूबकर दुःख पानेवालों के चरित्रों को देखना ही सुन्दर कथा है।

अपने प्रश्नों के इस तरह उत्तर पाकर यक्ष बहुत खुश हुआ। उसने सबको पानी ही नहीं पिलाया, बल्कि उनकी रक्षा का वचन दिया।

बारह वर्ष तक वनवास में रहने के बाद पाण्डव एक वर्ष तक विराट के यहाँ अज्ञातवास में रहे। अज्ञातवास पूरा होने पर जब उन्होंने कौरवों से अपना आधा राज्य माँगा, तो उन्होंने सूई की नाक के बराबर भूमि देने से भी इन्कार कर दिया। सुलह के बहुत प्रयत्न किए गए, लेकिन सुलह नहीं हुई और अन्त में महाभारत का भयानक युद्ध हुआ। यह युद्ध १७-१८ दिन तक च

:१५:

भगवान् पार्श्वनाथ

प्यारे राजा बेटा,

इसके पहले तुम भगवान् नेमिनाथ की कहानी पढ़ चुके हो। आज से करीब तीन हजार वर्ष पूर्व और भगवान् नेमिनाथ के करीब डेढ़-दो हजार वर्ष बाद भगवान् पार्श्वनाथ हुए हैं। वे महा- वीर स्वामी के २५० वर्ष पहले हो गए हैं।

भगवान् नेमिनाथ ने संन्यास या श्रमण-धर्म पर जोर दि था, यह तुम पढ़ चुके हो। उनके त्याग और तपस्या के प्रति जन आकर्षित हो गई थी और संन्यासियों की संख्या बढ़ रही थी सांसारिक मोह-माया का त्याग कर साधु-जीवन बिताना श्रे चीज मानी जाती थी और उसे आदर की दृष्टि से देखा जाता था जनता भावना के वशीभूत होकर साधुओं की पूजा भी करने लगी आदर और पूज्यता मिलती देख सैकड़ों कठोर तपस्वी होने लगे।

लेकिन हर-एक बात की सीमा होती है। सीमा पार पहुँ कर हर बात में बुराई पैदा हो जाती है। धीरे-धीरे तपस्या में आत्म-कल्याण की भावना भी निकल गई, रह गया केवल क कठोर यानी देह-दमन। अनेक तरह से शरीर को तपाना, कष्ट हो तपस्या रह गई। इस तरह शरीर कष्ट के सम्बन्ध में किसे कौ

"यह तो ठीक है कि मैं धर्म को नहीं जानता पर यह समझता हूँ कि बिना ज्ञान और विवेक के काय-क्लेश करने में लाभ नहीं है। इससे सुख नहीं मिल सकता।"

"राजकुमार, अधिक बकवास मत करो। अनधिकार-चे तुम्हें शोभा नहीं देती। धर्म-कर्म को तो हम जैसे तपस्वी ही सकते हैं।" "केवल संसारके त्याग में और कठोर शरीर-यातना ही धर्म नहीं है महाराज! विवेक का नाम धर्म है। जीवों की से और रक्षा का नाम धर्म है। धर्म तो आत्मा की चीज है। आप शरीर से ही उलझ रहे हैं। आपकी इस तपस्या से दूसरे जीव दु हो रहे हैं, क्या आपको इसका पता है?"

"मैं ‥मै मैं किसको कष्ट दे रहा हूँ। कहाँ दे रहा हूँ कष्ट? मैं तो खुद कष्ट सह रहा हूँ!"

"यह देखिए महाराज, आपके सामने जो लकड़ी जल रही उसमें नाग-युगल तड़फड़ा रहे हैं—बेचारे झुलस रहे हैं। इतना नहीं, ऐसे अनेकों सूक्ष्म-जन्तु अग्नि में भस्मीभूत हो जाते हैं। तरह जीवों की हिंसा करके तपस्या करना अज्ञान है।"

राजकुमार ने सेवक को जलते हुए लकड़ में से नाग-युगल को निकालने का आदेश किया। अग्नि की ताप से नाग और नागिन दोनों अधमरे-से हो गए थे। पार्श्वकुमार अत्यन्त करुण भाव से उनके पास गए। उन्होंने उन्हें बड़ी प्रेम-पूर्ण और दया भरी दृष्टि से देखा। पार्श्वकुमार के [illegible] और करुण मुख को देखकर [illegible] पार्श्वकुमार के पवित्र चरणों [illegible] प्राण त्याग।

२. सदा सत्य व्यवहार करो।

३. बिना दिए किसी की वस्तु ग्रहण मत करो यानी चोरी न करो। दूसरे का शोषण मत करो।

४. जरूरत से ज्यादा किसी भी चीज का संग्रह न करो। परिग्रह से चिन्ता बढ़ती है और दूसरे का शोषण करना पड़ता है जो पाप है।

यों तो श्रमण-परम्परा प्राचीन थी लेकिन हिंसा से बचने के लिए श्रमणों ने व्यक्तिगत आत्म-कल्याण को महत्त्व दे दिया था और इसके लिए वे जंगलों में जाकर तपस्या-साधना करने लगे थे। यह परम्परा आगे जाकर समाज-जीवन के लिए अकर्मण्यता या उदासीनता पैदा करने लगी। इस त्रुटि को पार्श्वनाथ ने पकड़ लिया और उन्होंने धर्म को इस रूप में समझाया कि प्रत्येक प्राणी दूसरे को अपने समान जाने और इसी तरह व्यवहार करे। उन्होंने सामाजिक अधर्म और असमता को मिटाने के लिए अहिंसा और सत्य की व्यावहारिक साधना पर जोर दिया और इसकी पूर्ति के लिए अशोषण (अचोरी) और अपरिग्रह (असंग्रह) ये दो साधन इसके साथ जोड़ दिए। इस तरह उनका उपदेश 'चातुर्याम धर्म कहलाया'। वे मानते थे कि दूसरों के साथ समानता का व्यवहार तभी किया जा सकता है जब कि जरूरत से अधिक संग्रह नहीं किया जाता। क्यों कि संग्रह के लिए शोषण करना ही पड़ता है। सब सुखी हों समान हों इसलिए असंग्रह और अशोषण आवश्यक है।

उनके इन सीधे और सच्चे उपदेशों से लोगों का बहुत लाभ हुआ। लोग उन्हें भगवान मानने लगे। उनके कई शिष्य और

अनुयायी बने। भगवान् महावीर स्वामी के समय तक पार्श्वप्रभु के धर्म की परम्परा चलती रही। उनके सम्प्रदाय के कई साधु थे। महावीर स्वामी भी सच पूछा जाय तो उन्हींके विचारों के प्रचारक थे। महावीर स्वामी के प्रकट होते ही पार्श्वनाथ की परम्परा के साधु उनके संघ में आ गए।

भगवान् महावीर ने २५० वर्ष बाद इन चार यामों में ब्रह्मचर्य जोड़कर पाँच यमों के पालन पर जोर दिया। भगवान् बुद्ध ने इन्हीं यमों को अष्टांगिक मार्ग में स्वीकार कर उनका सुन्दर विकास किया। कुछ इतिहासकारों का मत है कि योग में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य नामक जो पाँच यम बताए हैं, वे भी पार्श्वनाथ के चातुर्याम से ही लिए गए हैं। महापुरुष ईसा को भी पार्श्वनाथ के यामों से प्रेरणा मिली थी। इसीलिए इतिहासकारों का कहना है कि समाज में धर्म को प्रतिष्ठित और प्रसारित करने में पार्श्वनाथ से ही प्रेरणा मिली थी और वे इस कारण सब महापुरुष हो गए हैं।

इस तरह मुझे मालूम होता कि भगवान नेमिनाथ ने जिस [illegible] परम्परा को विकसित किया था, उसी को लेकर पार्श्वनाथ [illegible] के अनुसार की ओर [illegible] भगवान महावीर स्वामी [illegible]

[illegible]

: ६ :

पैगम्बर मुहम्मद साहब

प्यारे राजा बेटा,

तुम मुसलमानों को तो जानते ही हो। ये लोग इस्लाम धर्म को मानते हैं। इसे मुस्लिम धर्म या मुसलमान धर्म भी कहते हैं। इस्लाम धर्म को शुरू करनेवाले या उसके प्रवर्तक मुहम्मद साहब थे। दुनिया में इस्लाम धर्म माननेवालों की संख्या कम नहीं है। विश्व में मुसलमानों की संख्या करीब तीस करोड़ है। अरबस्तान में तो यह शुरू ही हुआ था लेकिन ईरान, ईजिप्त, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, ताजकिस्तान, तुर्कस्तान और सीरिया में भी मुसलमानों की बहुत बड़ी संख्या है। और यों तो सारे एशिया भर में मुसलमान लोग फैले हुए हैं। पाकिस्तान भी जो पहले हिन्दुस्थान का ही हिस्सा था, अब मुसलमानों का देश हो गया है।

जिस समय अरबस्तान में मुहम्मद साहब का जन्म हुआ, तब वहाँ की हालत बहुत खराब थी। यह १२-१३ सौ वर्ष पहले की बात है। उस समय अरबस्तान के लोग असंख्य कबीलों में बँटे हुए थे। 'कबीला' गिरोह या समूह को कहते हैं। प्रत्येक कबीले का अलग-अलग देव था। धर्म की समझ और मोटी बात किसी को मालूम नहीं थी। कुछ लोग गाँवों और शहरों में स्थायी रूप से रहते थे, तो कुछ

विचार-शील बन गए। परिश्रम करने से उनका स्वभाव परिश्रमी हो गया। अलग-अलग स्थानों और देशों में घूमने से बहुत ज्ञान मिलता है। निर्भयता बढ़ती है। लोगों से सम्बन्ध बढ़ता है।

मुहम्मद साहब बहुत सादगी से रहते थे। वे भोजन में रोटी और खजूर लेते थे। गरीब और धनी के साथ उनका एक-सा बर्ताव था, और व्यवहार में ईमानदार रहते थे। उनके मेहनती स्वभाव और ईमानदारी को देखकर खदीजा नामक एक धनी विधवा ने अपने व्यापार की देखरेख के लिए उन्हें अपने यहाँ रख लिया। थोड़े दिनों बाद दोनों में प्रेम हो गया। खदीजा उनसे उम्र में १५ वर्ष बड़ी थी, फिर भी दोनों का विवाह हो गया। आगे चल खदीजा ही उनकी पहली अनुयायिनी बनी।

उनकी गृहस्थी सुख से तो चल ही रही थी, लेकिन वे गृहस्थी में ही मग्न न रहे, लोगों से धर्म की चर्चा भी करते रहते थे। बाइबिल का अरबी भाषा में अनुवाद करनेवाले वराका तथा दूसरे ईसाई, यहूदी आदि लोगों के सम्पर्क में आने पर उनसे भी धर्म तथा सदाचार की चर्चा करते। धीरे-धीरे घर गृहस्थी से उनका चित्त उठ गया और वे अपने देश-वासियों की भलाई का मार्ग ढूँढ़ने में चिन्तित रहने लगे। हमेशा विचार करते-करते उन्हें ऐसी अनुभूति हुई कि खुदा, ईश्वर या भगवान एक ही है। उसने मुझे संसार की भलाई का सन्देश देने के लिए भेजा है। उन्होंने लोगों को उपदेश देते हुए कहा, "दूसरों के साथ झूठ व्यवहार मत करो। सचाई पर झूठ का पर्दा मत डालो। नम्र बनो और अच्छे काम करो। दुनिया के लोग तो 'मानेवाले ने क्या कहा'

ही पूछते हैं, लेकिन देवदूत तो 'मरनेवाले ने कौन से अच्छे-अच्छे म किए' यही पूछते हैं।"

इसने रूढ़िवादियों को उनका इस तरह उपदेश देना अच्छा हीं लगा। उनके खास विरोधी कुरेशी लोग थे। वे अपने आपको सबसे ऊँचा मानते थे। अपने आपको ऊँचा मानना अहंकार है। हंकार से आदमी नीचे गिरता है। अहंकारी में दया और नम्रता ही रहती। इसी लिए अपने यहाँ बताया है कि :

जाति, लाभ, कुल, रूप, तप, बल, विद्या, अधिकार।
इनका गर्व न कीजिये, ये मद आठ प्रकार॥

ो, कुरेशियों को समता का उपदेश अच्छा नहीं लगा और उन पर त्थर फेंकने लगे तथा मार डालने का भी विचार किया। इस लिए मक्का छोड़कर मदीना चले गए। रास्ते में भी कुरेशियों ने उन्हें र डालने का प्रयत्न किया, लेकिन सफल न हो सके।

इधर तुम पढ़ चुके हो कि उस समय अरब के लोगोंकी बुरी हालत थी। खास कर मक्का की तो बड़ी बुरी दशा थी। वहाँ के लोगों को सुधारनेके लिए उन्होंने बहुत कष्ट उठाए। लेकिन जब लोग अपनी रूढ़ियों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुए, बल्कि मार डालना चाहते थे तो मजबूर होकर उन्हें तथा उनके अनुयायियों को मक्का छोड़कर मदीना भाग जाना पड़ा। इस तरह भागने को हिजरत कहते हैं 'हजरत मु[illegible]' से चला है। ईसाइयों का इसवी सन [illegible] और महावीर [illegible], राजा [illegible]
[illegible]

दिन धर्म के माने जाते हैं वैसे ही मुसलमानों में भी मुहर्रम के दस दिन धर्म के माने जाते हैं।

मुहम्मद साहब ने एक काम यह किया कि लड़कों के समान लड़कियों को भी पिता की सम्पत्ति का हकदार बनाया। मुसलमानों में लड़की पिता के धन की अपने भाई के समान ही अधिकारिणी होती है। स्त्री जाति के प्रति उनमें बहुत करुणा और सहानुभूति थी। हिन्दुओं में अभी यह प्रथा नहीं है।

मुहम्मद साहब ने अपने जीवन में बहुत कष्ट सहे, कई लड़ाइयाँ लड़ीं। बुढ़ापे में उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, फिर भी अन्तिम बार मक्का की यात्रा को मदीना से आए थे। इतने थक गए थे कि काबा के मन्दिर की प्रदक्षिणा भी उन्हें ऊँट पर बैठे-बैठे ही करनी पड़ी। मदीना लौटने पर ८ जून सन् ६३२ में उनका स्वर्गवास हो गया।

अपने देश और जाति वालों की आपसी फूट मिटाकर उन्होंने एकता का सन्देश सुनाया था। उससे अरबवालों का काफी विकास और गौरव हुआ। इसी कारण संसार के करोड़ों आदमी उन्हें पूजते हैं। वे पैगम्बर माने जाते हैं।

अपने देश में मुसलमान [illegible] करीब [illegible] हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों में धार्मिक [illegible] समय पर [illegible] [illegible] से मुसलमान तथा हिन्दुओं में [illegible] है,

: ७ :

ज़रथुस्त और पारसी समाज

प्यारे राजा बेटा,

तुमने पारसी लोगों को देखा है न ? ये लोग बहुत अच्छे होते हैं। साफ सुथरे रहते हैं। इनकी भाषा गुजराती है। ये लोग अधिकतर व्यापारी ही हैं। इनके व्यवहार में नम्रता और मिठास रहती है। इनकी वेश-भूषा भी एक विशेष प्रकार की रहती है। टोपी पगड़ी के समान अपनी खासियत रखती है। बम्बई के व्यापारियों में पारसी लोगों का खास स्थान है। व्यापार करने में ये लोग बड़े चतुर और साहसी होते हैं। इसीलिए इन्होंने बड़े-बड़े उद्योग और कारखाने स्थापित किए तथा चला रहे हैं। अपनी कुशलता और व्यवस्था के कारण व्यापार में इन्होंने नाम भी काफी कमाया।

संसार के उद्योग पतियों में 'टाटा' का बहुत ऊँचा स्थान है। टाटा का लोहे का कारखाना संसार का एक बहुत बड़ा कारखाना माना जाता है। यह जमशेदपुर में है। इस नगर को अब टाटा नगर भी कहते हैं। यह जमशेदपुर बिहार में है। इस कारखाने में प्रतिदिन टनों से लोहे की चीजें बनती हैं। हिन्दुस्तान के प्राय.

सभी प्रमुख उद्योगों में टाटा ने हिस्सा लिया था। इनका नाम जमशेदजी टाटा था। लोहेके कारखाने वाले गाँव को इसीलिए जमशेदपुर या टाटा नगर कहते हैं। बिजली, वस्त्र, तेल, साबुन, सीमेन्ट और हवाई जहाज आदि उद्योगों तथा बीमा, बैंक आदि प्रमुख उद्योगों में भाग लेकर टाटाने अपने देश के व्यापार को काफी ऊँचा उठाया है। नागपुरकी एम्प्रेस मिल एशिया की सबसे बड़ी कपड़े की मिल है। वह टाटा की ही है। यह सब होते हुए भी टाटाकी यह विशेषता है कि उनके उद्योगों में मजदूरों को अब मुनाफे का हिस्सा मिलने लगा है।

पारसी लोग हिन्दुस्तान के नहीं हैं। इनका मूल निवासस्थान ईरान है। इसे पर्शिया भी कहते हैं। यह हिन्दुस्तान के उत्तर में सुन्दर देश है। वहाँ की भाषा पर्शियन या पारसी (फारसी) कहलाती है। फारसी और हिन्दी के मिश्रण से ही उर्दू भाषा बनी है। पर्शियन भाषा बड़ी मधुर मानी जाती है और उसकी गज़ल, कवालियाँ आदि प्रसिद्ध हैं। ईरानके लोग बड़े कला प्रिय और कलाकार होते हैं। वहाँ के गलीचे बड़े अच्छे होते हैं। अब शायद तुम यह जानना चाहोगे कि ये लोग ऐसे सुन्दर और कला-प्रिय देश को छोड़ कर अपने यहाँ क्यों आए!

बात यह है कि अरबस्थानमें जब मुस्लिम धर्म स्थापित हुआ तो मुसलमानों ने ईरान देश पर हमला कर दिया। देश को जीतकर वहाँके निवासियों को वे मुसलमान बनाने लगे। इसलिए अपने धर्मको बचाने के लिए वे लोग हिन्दुस्तान में आए। भारतवर्षकी यह विशेषता रही है कि बाहर से अनेक [illegible] लोग [illegible] यहाँ बस[illegible]

स्वागत ही होता रहा है। यहाँ के विचारकों ने सबको उदारत पूर्वक स्थान दिया। पारसी भाई संकट में थे, उन्हें भी आश्र मिल गया।

पहले-पहल वे सजान नामक बन्दरगाह पर उतरे। भारत-वासियों की उदारता का उन पर बहुत असर पड़ा। उन्होंने बन्दर-गाहके आस-पासके प्रदेश की गुजराती भाषा सीखी और वे भारत को अपनी जन्म-भूमि मानने लगे। अपने धर्म-पालन की उन्हें पूरी स्वतन्त्रता थी।

पारसी धर्म के संस्थापक जरथुस्त माने जाते हैं। कहा जाता है कि जरथुस्त तीन हजार वर्ष पहले हुए हैं। सचमुच यह बड़े महत्त्व की बात है कि उस समय प्राय सभी देशों में महापुरुष पैदा हुए थे। महापुरुषों का जन्म फैली हुई बुराइयों को मिटाने और लोगों को सच्चे मार्ग पर लगाने के लिए ही होता है। जर-थुस्त के जन्म के समय भी उस देश में धर्म के नाम पर बहुत बुराई बढ़ गई थी।

जरथुस्त के पिताका नाम पुरुशास्य तथा माता का नाम दुग्धोवा था। इस तेजस्वी बालक की लीलाओं को देखकर जहाँ माता-पिता और सत्पुरुषों को आनन्द होता, वहाँ दुष्ट और रूढ़ि ग्रस्त लोगों को बुरा लगता था। वे जरथुस्त का विनाश करना चाहते थे। दुष्टों का स्वाभाव ही ऐसा होता है कि व दूसरों की उन्नति को सहन नहीं कर सकते, अकारण ही कष्ट देना चाहते हैं, हानि पहुँचाना चाहते हैं। करोड़ों उपकार करने पर भी दुष्ट

गंभीर और सहनशील होते हैं। देखो न, समुद्र कितना अपार और अथाह होता है; लेकिन वह कभी अपनी मर्यादा नहीं लांघता।

उनका पहला शिष्य उनका भतीजा था। उसका नाम मेत्यामा था। ज़रथुस्त्र ने राजा वैशुस्ताप को अपना सन्देश सुनाकर उसे अनुयायी बनानेका विचार किया। लेकिन यह काम सरल नहीं था। राजाके यहां दम्भी लोगों का जमघट था। राजा के धर्म-गुरुओं ने ज़रथुस्त्र से संगीन कठिन प्रश्न पूछे। प्रश्नों के अच्छे उत्तर सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। ज़रथुस्त्र के प्रति उसके मन में आदर बढ़ने लगा। यह देखकर धर्म-गुरुओंको अच्छा नहीं लगा और झूठा दोष लगाकर ज़रथुस्त्र को जेल भिजवा दिया। ऊपर से राजा की आज्ञा हुई कि उसे भूखा रखा जाय। लेकिन राजाने जब विचार किया तब उसे अपनी करनी का पछतावा हुआ और ज़रथुस्त्र को छोड़ दिया। इतना ही नहीं, राजा ने ज़रथुस्त्र के धर्म को स्वीकार कर लिया।

ज़रथुस्त्र अनेक वर्षों तक धर्म का प्रचार करते रहे। वैदिक धर्म और ज़रथुस्त्र धर्म मिलते-जुलते ही हैं। वास्तव में देखा जाय तो धर्म सभी अच्छे हैं। देश और काल की परिस्थिति के अनुसार समय और बदलने के ढंग में भेद हो जाता है।

ज़रथुस्त्र धर्म के मुख्य सिद्धान्त ये हैं :—

१. मनुष्य और प्राणी मात्र का उद्देश्य विकास करना है।

२. स्त्री और पुरुष, दोनों को सत्य-असत्य को जानने और धर्म के पालन का समान अधिकार है।

जिसके द्वारा मदद दी जाती है। इनका सामाजिक संगठन बड़ा मजबूत और व्यवस्थित है। अपनी जातिके एक भी आदमी का दुख उनकी पूरी जाति का दुख हो जाता है। इसी तरह की एक 'कच्छी' कौम है, जिसका भी कोई आदमी भीख नहीं मांगता केवल अपनी जाति ही नहीं, पारसी लोगों ने देश के लिए भी बहुत धन खर्च किया और मानव-मात्र की सेवा की है। उनकी सेवाएँ सभी क्षेत्रों में दीख पड़ेंगी।

भारतवर्ष की राजनीति में दादाभाई नौरोजी को नहीं भुलाया जा सकता। 'स्वराज' शब्द का उच्चारण सबसे पहले उन्होंने ही किया था। वे भारत के पितामह यानी दादा माने जाते थे। उन्होंने देश की महान सेवा की है। फिरोजशा मेहता एक समय बम्बई के सिंह माने जाते थे। इन्होंने भी कांग्रेस की बहुत सेवा की है।

इस तरह छोटी होने पर भी पारसी जाति ने अपनी सचाई और कर्तव्य-शीलता से काफी प्रतिष्ठा और स्थान प्राप्त किया है।

संक्षेप में यह पारसी धर्म तथा पारसी समाज का परिचय है। बड़े होनेपर और अधिक जानने की कोशिश करना।

—रिषभदास के प्यार

गुरु नानक

प्यारे राजा बेटा,

तुमने पंजाबियों या सिक्खों को देखा है न ? वे सिर और दाढ़ी के केश नहीं कटवाते और साफ़ा बांधते हैं। ये लोग ऊँचे-पूरे और तन्दुरुस्त होते हैं। ये ताकतवर भी होते हैं। सिक्ख लोग ज़्यादातर फ़ौज में काम करते हैं और बहादुरी के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। इन लोगों के गुरु का नाम नानक था। आज मैं तुम्हें नानकजी के बारे में ही लिख रहा हूँ। वे सिक्ख धर्म के संस्थापक थे।

गुरु नानक का जन्म तलवण्डी नामक ग्राम में सन् १४६९ में हुआ था। तलवण्डी पंजाब प्रान्त में एक छोटा-सा गाँव है। इनके पिता का नाम कालूरामजी और माता का तृप्ति देवी था। वे क्षत्रिय थे। कालूरामजी दूकान करते थे, खेती करते थे और जागीरदार के यहाँ काम भी करते थे। खा-पीकर सुखी थे। यह लगभग पाँच-सौ बरस पहले की बात है।

श्री कालूरामजी ने बहुत प्रयत्न किया कि बालक नानक को पढ़ाया जाय, और वह फ़ारसी भाषा भी पढ़े, लेकिन नानक का मन इस पढ़ाई में नहीं लगा। वे [illegible] की आज्ञा लेकर [illegible] जब उनका पढ़ाई में मन नहीं लगा तब कालूरामजी ने [illegible] काम धंधे में लगाया [illegible] नानक का मन [illegible] दूसरी

ही तरफ दौड़ रहा था। वे तो साधु-सन्तों की संगति में रहते, उनसे धार्मिक चर्चा करते। माता-पिता नानक की यह दशा देखकर बड़े निराश हुए। माता-पिता की नज़र में तो वही लड़का अच्छा होता है जो काम-धंधे में लग कर दो पैसे की कमाई करे।

पर, जब फसल के दिन आए तब खेत पर किसी को भेजना तो जरूरी था। कालूरामजी ने नानक से जाने के लिए पूछा। नानक ने हाँ भर ली। वे फसल की सम्हालने के लिए चले गए। वहाँ चिड़िया आकर खेत खाने लगी। नानक चिड़िया के चहकने और चुगने पर मुग्ध हो गए। उन्हें यह बहुत अच्छा लगा।

इस तरह जब वे चिड़ियों को उड़ाने के बदले उन्हें खिलाकर आनन्द मानने लगे, तब फसल क्या होती! नानक के पिता को यह सब देखकर बहुत दुख हुआ। उन्होंने समझ लिया कि नानक इस काम के योग्य लड़का नहीं है। आखिर उन्होंने नानक को अपने पास ही रखा और दूकानदारी सिखाई। पिताजी की देखरेख में नानक अच्छी तरह सीख गए। पिताजी को भी विश्वास हो गया कि नानक अब कमाने-खाने लायक हो गया है।

एक दिन उन्होंने नानक से कहा "देखो, अब तुम ठीक तरह काम करने लगे हो। और इस दूकानदारी में दोनों का लगे रहना ठीक नहीं। इसलिए ये रुपए लो, और इन से माल लाकर व्यापार करो। और देखो, व्यापार ऐसा करना कि सौ के दुगुने और चौगुने हो जाएँ।"

नानकजी ने रुपए लिए और एक आदमी के साथ चल दिए। सामान ढोने के लिए साथ में एक बैल गाड़ी भी रख ली। रास्ते में एक

"आखिर वह काम कौन-सा है ?"

जो कुछ हुआ था नानक ने सच-सच बता दिया। सुनकर पिताजी को बड़ा दुःख हुआ। वे अब अच्छी तरह समझ गए कि व्यवहार के लिए नानक बिलकुल अयोग्य है।

कुछ दिनों के बाद नानकजी का विवाह कर दिया गया। इससे उन्हें दो पुत्र भी हुए, लेकिन व्यवहार में उनका मन लगता नहीं था। यह देखकर नानकजी के बहनोई श्री जयराम उन्हें अपने साथ सुलतानपुर ले जाना चाहते थे।

सुलतानपुरमें नानकजी को जयरामजी की सिफारिश से सूबेदार के अन्न-भाण्डार का कार्य सौंपा गया। इसे उन्होंने बहुत अच्छी तरह किया। वे ईमानदार और सत्यवादी तो थे ही। उन्होंने यह काम अच्छी तरह इसलिए भी किया कि उन्हें जयरामजी की सिफारिश से मिला था। इन के द्वारा काम बिगड़ने पर जयरामजी की बदनामी होती।

यहाँ साधुओं का जमघट तो रहता ही था। नानकजी की सहृदयता और प्रामाणिकता पर सूबेदार भी प्रसन्न थे।

उनकी दिन-चर्या बड़ी सीधी सादी थी। प्रातःकाल बड़े तड़के उठकर स्नान आदि कर ध्यान में बैठ जाते। फिर भोजन कर अपने कार्य में लग जाते। संध्याको अपने साथियों के साथ भजन-कीर्तन में लग जाते। सारंगी बजाकर भजनोंमें जिसने उनका उम्रभर साथ दिया वह मरदाना भी इस समय सुलतानपुर में

का उपदेश किया। हिन्दुओं को और मुसलमानों को—दोनों को उन्होंने कट्टरता के लिए फटकारा। असली धर्म को समझाने के लिए प्रयत्न किया। इन लोगों पर भारत के प्राचीन ब्राह्मण, बौद्ध और जैन धर्मों का पूरा प्रभाव था। इन सबों में हिन्दू और मुसलमान—दोनों थे। इसी समय पंजाब में नानकजी का उदय हुआ।

पंजाब हरा-भरा देश है। हिन्दुस्तान का नक्शा देखने से मालूम होगा कि यह देश एकदम उत्तर में है। पंजाबकी आब-हवा बहुत सुन्दर है। इस प्रान्त में बड़ी-बड़ी पाँच नदियाँ बहती हैं इसलिए इसे पंजाब कहते हैं। पंच और आब मिलकर पंजाब शब्द बना है। आब का अर्थ पानी होता है। झेलम, रावी, सतलज, बियास और चिनाब ये नदियाँ हैं। ये सब हिमालय से निकलकर पंजाबसे बहती हुईं सिन्धु नदी में मिलती हैं। सिंधु भारत की बहुत बड़ी नदी है। भारतवर्ष के इतिहास का, संस्कृति का सिंधु नदीसे बड़ा गहरा सम्बन्ध है। हिमालय से निकलने के कारण पंजाब की ये नदियाँ सदा भरी रहती हैं। गर्मी में तो और भी ज्यादा भरी रहती हैं क्योंकि हिमालय का बर्फ गलकर बहता है। इस कारण पंजाब में पानी की कमी कभी नहीं पड़ती और सिचाई से खेती होती है। सिंचाई के कारण वहाँ की जमीन काफी उपजाऊ है। पंजाब में नहरें बहुत हैं।

पंजाब की उपज में गेहूँ और चना बहुत प्रसिद्ध है। चावल भी बढ़िया होता है। अमृतसर के चावल लम्बे-लम्बे और खाने में बड़े स्वादिष्ट होते हैं। इन चावलों की विशेषता यह है कि थोड़े से

बनाने पर भी पकने पर बहुत हो जाते हैं। लेकिन चावल ज्यादा नहीं होते। काश्मीर, सीमाप्रान्त और काबुल नजदीक होने से और ठण्डा प्रदेश होने से पंजाब में अंगूर, अनार, सेब आदि फल तथा बादाम, पिस्ते, काजू, चीचो आदि मेवे बहुत सस्ते मिलते हैं। इसीलिए पंजाबी लोग हट्टे-कट्टे और लाल होते हैं।

पंजाब की गायें भी अच्छी होती हैं। १०-१० और १५-१५ सेर तक दूध देती है। शाहीवाल और मोंटगुमरी जाति की तथा हिसार और हरियाना नस्ल की गायें अच्छी होती हैं। हरियाना जाति की गायें दूध तो अच्छा देती ही हैं, इनके बैल भी बड़े अच्छे होते हैं। हिसार-हरियाना की गायें अपने यहाँ की गौलाऊ गायों की तरह सफेद होती हैं। तेज और सुन्दर भी होती हैं। शाहीवाल गाय दूध तो खूब देती है किंतु बैल उतने अच्छे नहीं होते; जितने हिसार और हरियाना के होते हैं। पंजाब की भूमि गीली यानी नरम होने से वहाँ थोड़ा-बहुत काम तो देते ही हैं, फिर भी हरियाने की अपेक्षा ढीले और नरम होते हैं। हरियाना के बैल चुस्त, तेज और शक्तिशाली होते हैं।

पंजाब में यहाँ से बहुत ज्यादा ठण्ड पड़ती है। खाने की पौष्टिक और [illegible] चीजें भी अत्यधिक और सस्ते दामों में मिलती हैं। इसलिए पंजाबी लोगों का शरीर मजबूत, सुन्दर तथा [illegible] होता है।

[illegible]

शक और हूणों के हमले हुए थे। फिर पठानों, मुगलों और अ
के हुए— ये मुसलमान थे। इन सब से मुकाबला करने के
पंजाबियों को तैयार रहना पड़ता था। पंजाब शूरवीरता के
प्रसिद्ध रहा है।

हमेशा के इस युद्ध और द्वेष के कारण हिन्दू-मुस
भेद जोर पकड़ने लगा। अब वे यहीं बस ही गए और
करने लगे तो कुछ संतों ने देखा कि अब मिलकर रहने में ही दे
लाभ है। लड़ते-लड़ते देश की शक्ति कम हो गई थी और कुछ
भी लोग थे जो घर में फूट डालकर मुसलमानों में मिल ग
ऐसी हालत में कुछ सन्तों ने भारत की आध्यात्मिकता को
लोक-भाषा में आरम्भ किया। उन सन्तों में नानक भी एक थे।

ये कबीरदास, रैदास, दादू, नानक आदि संत सब भ
समन्वय लाना चाहते थे। इनका कहना था कि मनुष्यमा
कोई भेद नहीं है— जाति, वर्ण और ऊँच-नीच के भेद फजू
धर्म तो प्रेम और भाईचारा सिखाता है। इन लोगों ने यह
बताया कि हरएक आदमी को अपना धर्म पालना चाहिए लेकिन
धर्म के प्रति निंदा के और तिरस्कार के भाव नहीं रखना चाहि

अपने विचारों को फैलाने के लिए नानकजी ने भ्रमण
किया। वे लगभग तीन वर्ष तक भ्रमण करते रहे। न केवल
स्तान, बल्कि मक्का-मदीना तक घूम आए। भ्रमण करने से अ
का हृदय निर्भीक हो जाता है और सैकड़ों प्रकार के लोगों

मिलकर अनुभव भी बहुत बढ़ जाता है। लोगों का सम्पर्क बढ़ता है, ज्ञान बढ़ता है, प्रान्त-प्रान्त के रीति-रिवाज मालूम होते हैं। तीन साल तक घूमकर नानकजी ५५ वर्ष की उम्र में आकर कर्तारपुर में बस गए। घूमने के समय जो साधु वेष लिया था वह उतार दिया और गृहस्थी के रूप में रहने लगे। खेती द्वारा जीवन निर्वाह करते थे। वे खेती जैसे पवित्र और परिश्रमी उद्योग में लगकर अपना धर्म-प्रचार भी करते रहे।

वे गाते बहुत अच्छा थे। उनके भजन बड़े लोकप्रिय हैं। उन्होंने अपने पद-भजन गुरुमुखी और प्राचीन-हिन्दी भाषामें लिखे हैं। जिस पुस्तक में उनके अनुभव लिखे हुए हैं, उसका नाम 'जपजी' है। इसमें कविता में सारा तत्व-ज्ञान भरा है।

उनका कहना था कि राग-द्वेष से दूर रहना ही साधु-जीवन है। परिश्रम से ही आदमी की शक्ति बढ़ती है। हिन्दू और मुसलमान सब उन्हें चाहते थे क्योंकि वे किसी तरह का भेद मानते ही नहीं थे। जब उनका स्वर्गवास हुआ तब हिन्दू अपने ढंगसे उनका क्रिया-कर्म करना चाहते थे और मुसलमान चाहते थे कि वे दफनाए जायँ। इससे तुम समझ सकते हो कि वे कितने लोक-प्रिय थे।

उनका जीवन बड़ा सादगी-पूर्ण था। सुबह बड़े तड़के उठना और प्रार्थना-स्तवन ध्यान-स्वाध्याय आदि करते। दिनभर खेती का काम करना, फिर रात को चिन्तन-मनन और भजन होते।

[illegible]
[illegible]

कहते हैं और वहाँ हरएक आदमी बिना किसी भेद-भाव के जा सकता है। सिक्खों का सबसे बड़ा मंदिर अमृतसर में है जिसे स्वर्ण-मंदिर कहते हैं। यह भारत का बहुत प्रसिद्ध मंदिर है।

सिक्ख लोगों की पाँच विशेषताएँ बाहर दिखाई देती हैं—

१. वे केश नहीं कटवाते।
२. साफा बाँधते हैं।
३. कंघी साफे में रखते हैं।
४. हाथ में कड़ा रखते हैं।
५. और, कटार रखते हैं।

शुरू-शुरू में भले ही इनके रखने का उद्देश्य दूसरा रहा हो, लेकिन आज तो ये सब धार्मिक विधि में मानी जाती हैं।

बड़े होने पर नानकजी के बारे में और भी बातें तुम्हें जानने को मिलेंगी। अभी तो इतना ही काफी है।

—रिषभदास के प्यार

:९:

सत्याग्रही मघ

प्यारे राजा बेटा,

तुमने पहले भगवान् बुद्ध की कहानी पढ़ी है न ! यहाँ उन्हीं के पूर्व-जन्म के एक भव की कहानी लिखी जा रही है। लगभग सभी भारतीय धर्मों की मान्यता है कि मनुष्य जो कुछ भले-बुरे काम करता है उनका सम्बन्ध केवल एक ही जन्म से नहीं रहता। पिछले कार्यों का परिणाम इस जन्म में और इस जन्म के कार्यों का परिणाम अगले जन्मों में भुगतना पड़ता है। आज हमें यदि कोई भला और महापुरुष दीखता है तो वह केवल इसी जन्म के कामों का फल नहीं है—उसके पीछे पहले के कई जन्मों का प्रभाव और संस्कार रहता है। बुद्ध और महावीर केवल एक ही जन्म से तथागत और तीर्थंकर—जननायक नहीं बन गए थे, उनके पीछे भी कई जन्मों के अच्छे कार्यों की कमाई थी। आदमी प्रयत्न करते-करते ही ऊपर चढ़ता है। जिस तरह सोना तपाने से शुद्ध बनता है, उसी तरह आदमी भी पुरुषार्थ, श्रम और सेवा से महान बनता है। बौद्ध धर्म में कहा गया है कि जो मनुष्य भविष्य में बुद्ध बनने-वाला होता है, वह पहले [illegible] आज [illegible]

बात अत्यंत प्राचीन काल की है। मघ का जन्म मगध देश के मचल नामक ग्राम में एक किसान के यहाँ हुआ था। समझदार होने पर ग्रामवासियों की स्वार्थ-वृत्ति देखकर उसे अच्छा नहीं लगा। ग्राम में फैलनेवाली गंदगी और उसके प्रति लोगों की उपेक्षा या असावधानी देखकर भी उसे बहुत बुरा लगा। किसी को उपदेश करने की अपेक्षा उसे काम करके दिखाना ही ठीक लगा। इसलिए अपने काम-काज से जो समय मिलता, उसमें वह गाँव की सफाई आदि किया करता। वह गाँव के रास्ते साफ करता, कूड़ा-करकट उठाकर गाँव के बाहर गड्ढे बनाकर डालता, कुँओं में गंदा पानी न जाने पावे, इसलिए नालियाँ बनाता। सड़कों पर पड़े पत्थरों, तिनकों काँटों आदि को एक तरफ कर देता। छोटे-छोटे बच्चे घरों के बाहर सड़कों पर टट्टी बैठ जाते तो वह भी साफ कर देता ताकि उसके कारण गाँव में गंदी हवा न फैलने पावे। लेकिन गाँव के लोग उसके इन लोकोपयोगी कामों की प्रशंसा न कर उसकी मजाक उड़ाने लगे। वे लोग कहते--"बड़ा चला है गाँव की सेवा करने, कभी अकेले से हुई है?" "अजी, वह तो पागल हो गया है—पागल! हमें क्या जरूरत है अपना काम-धंधा छोड़कर दूसरों का काम करने की।" कोई कहता--"अरे, वह तो नाम चाहता है—प्रसिद्धि के पीछे पड़ा है!' इसी तरह उसकी तरह-तरह से लोग मजाक उड़ाने लगे।

किन्तु किसी से प्रोत्साहन और सहयोग न मिलने पर भी उसने अपना कार्य बंद नहीं किया। वह निराश नहीं हुआ। वह जानता था कि उसका काम अच्छा है और सच्चा है। ना लोगों को उसका लाभ अवश्य होगा और एक दिन वे इन कामों की प्रशंसा

अवश्य करेंगे। आखिर उसकी निःस्वार्थ सेवा से कुछ तरुण आकर्षित हुए। उन्होंने देखा कि गाँव के दूसरे लोग अपने अवकाश का समय शराब की दूकान पर या चौपाल में बैठकर गप्पें हाँकने में बिताते हैं। इधर-उधर की बातें करने या व्यसनों से घर-गृहस्थी के काम तो ठीक से होते ही नहीं, आपसी झगड़े और मुकदमे होते रहते हैं। इनसे तो बेचारा मघ अच्छा जो अपने समय को अच्छे कामों में लगाता है। न किसी से कुछ माँगता है और न किसी का कुछ बिगाड़ करता है। उन तरुणों ने उसका साथ देना निश्चित कर लिया। तीस तरुण मघ के साथी बन गए। वे सब मिलकर गाँव की सेवा करने लगे।

इस तरह जब उनकी शक्ति बढ़ गई तब उन्होंने अपना कार्य-क्षेत्र भी बढ़ा दिया। उन्होंने पंगु और अनाथ लोगों के लिए आश्रम बनाया, आस-पास के गाँवों के रास्ते साफ किए। नदी-नाले पार करने के लिए छोटे-मोटे पुल बनाए तथा पथिकों की सुविधा के लिए तालाब खोदे। उनकी ऐसी सेवा को देखकर लोगों के मन में उनके प्रति आदर उत्पन्न होने लगा। गाँव वाले अब उसकी सलाह लेने लगे और वैसा ही करने लगे। इसमें उन्हें अपनी भलाई दीखने लगी। मघ और उसके साथियोंने जनता को व्यसनों से तथा एक दूसरे की निंदा और गप्प-बाजी की बुराइयों से होनेवाली हानियाँ बताईं और एकता तथा प्रेम का मार्ग बताया। इससे गाँव के तथा आस- पास में रहनेवाले लोग सदाचारी बनने लगे। झगड़े बन्द हो गए और सब मिल-जुलकर आनन्द से रहने लगे। शराब की दुकानें बन्द पड़ने लगीं और जूए के अड्डों पर ताले लग गए। ग्राम-भोजक की आमदनी बंद हो गई। गाँव की व्यवस्था करनेवाले

और झगड़ों का निपटारा करनेवाले तथा न्याय करनेवाले को उस ज़माने में ग्राम-भोजक कहा जाता था। उसकी कमाई तो आपसी झगड़ों से ही होती थी। जब सब लोग आनन्द और प्रेम से रहने लगे तब उसकी आमदनी कम होने ही वाली थी।

इससे ग्राम-भोजक चिन्ता में पड़ गया। उसे जब मालूम हुआ कि मघ और उसके साथियों के कारण गाँव के झगड़े बंद हो गए और इसी से उसकी कमाई कम हो गई है, तब वह क्रोधित हो उठा। मनुष्य के लोभ और स्वार्थ पर जब संकट आता है, तब वह विवेक खो बैठता है। ग्राम-भोजक ने मघ और उसके साथियों को दण्ड देने का उपाय खोजा। वह राजधानी में गया और बड़ा भारी नजराना देकर राजा से मुलाकात की। राजा ने उससे उसके अधीन प्रदेश का हाल-चाल पूछा।

उसने कहा—"राजन्! क्या बताऊँ? हमारे प्रदेश में कुछ डाकुओं तथा उनके मुखिया मघ ने बहुत ही उपद्रव मचा रखा है। सब लोग उनके डर से गाँव छोड़कर भाग रहे हैं। व्यापारी भी उधर नहीं आ रहे हैं। इससे रोजगार-धंधा भी बंद हो रहा है। लोग दुखी और भयभीत हैं।"

ऐसी बातें सुनकर राजा को बहुत सन्ताप हुआ। उसने कहा—"अच्छा हुआ जो तुमने ये बातें बतला दीं। मैं तुम्हारे साथ कुछ सेना देता हूँ। उन सब डाकुओं और उपद्रवियों को पकड़ लाओ और मेरे सामने हाजिर करो।"

सेनाकी मदद से ग्राम-भोजक ने मघ तथा उसके साथियों को पकड़ लिया। उन्होंने कुछ भी प्रतिकार नहीं किया। एक

छोटा-सा बालक भी यदि राजा की आज्ञा से पकड़ने आता तो वे इन्कार नहीं करते। बापूजी तथा दूसरे कांग्रेसवाले भी तो इसी तरह वारंट देखकर जेल जाते रहे हैं! जो सच्चा और सेवक होता है वह कभी भी न तो डरता है और न आना-कानी करता है। हाथ-पैरों में बेड़ियाँ डालकर सिपाही उन्हें राजधानी में ले गए। इन्स्पेक्टर ने इसकी सूचना राजा के पास पहुँचा दी।

राजा विलासी और आरामी था। उसे इतना अवकाश कहाँ था कि वह उन लोगों से परिचय पाकर न्याय करता। उसने भीतर से ही हुक्म छोड़ दिया कि "डाकुओं को चौक में औंधे लिटाकर उनपर मस्त हाथी फिरा दिए जायँ।"

उन्हें बाँधकर उल्टा सुला दिया गया और एक मस्त हाथी उनपर छोड़ने के लिए वहाँ लाया गया।

इस संकट के अवसर पर सब बिल्कुल शांत रहा। उसने अपने साथियों से कहा—"मित्रो, हमारा अब तक का समय अच्छे कामों में ही बीता है। हमारे मन में भी किसी की बुराई नहीं की है। फिर भी यह संकट हमपर आ रहा है। इससे कुछ के मन में यह विचार उठ सकता है कि अच्छे काम करने और सच्चाई से जीवन बिताने पर भी हमपर यह संकट कैसे आ [illegible]

[illegible]

दिन मरेंगे। मृत्यु टलनेवाली तो है नहीं, फिर उससे भयभीत होने की क्या जरूरत है? और हम अपने विचारों को भी दूषित क्यों करें? इस लोक में सदा न्याय ही नहीं मिला करता। हम सब कर्मों से बँधे हैं। उनसे हम तभी छूट सकते हैं जब उनका फल प्राप्त कर लेंगे। हमारे कर्म ही रक्षक और न्यायाधीश हैं। मौत के समय यदि हमारे विचार दूषित या कलुषित रहे तो परिणाम बहुत बुरा होगा। व्याकुलता या क्रोध से मृत्यु होनेपर अगले जन्म में नीच गति मिलती है। ऋषि-मुनियों ने ऐसा ही कहा है। इस लिए मेरा अनुरोध है कि हमें प्राणी-मात्र के प्रति मैत्री-भावना दृढ़ करनी चाहिए। हम स्वयं अपने पर, अपने कुटुम्बियों, साथियों और मित्रों पर जैसा प्रेम रखते हैं वैसा ही इस समय अपने विरुद्ध फरियाद करनेवाले ग्राम-भोजक, मृत्यु की आज्ञा देनेवाले राजा और हम पर दौड़ आनेवाले हाथी पर हमारा प्रेम रहना चाहिए। शत्रु-मित्र, अपना-पराया आदि भेदों को भूल जाइए। जिस प्रकार शरीर में हाथ-पैर आदि अनेक अवयव होते हैं वैसे ही सारे प्राणी एक संसार के भिन्न-भिन्न अवयव हैं। अपने किए हुए अब तक के सत्कर्मों का पुनरावलोकन करो। जान-अनजान में कभी किसीका कुछ अपराध बन पड़ा हो तो मन में उससे क्षमा माँगो और पश्चात्ताप करो।"

सब सभासदों ने मन्त्री की बात को बड़े ध्यान से सुना और वैसा ही किया। वे मानते हैं कि वे लोग इस प्रकार अन्त में मुक्त हो कर हमारा बड़ी वन्दना कर रहे हैं।

राजा को ऐसा लगा कि मघ और उसके साथी निर्दोष होने चाहिए। क्योंकि उन सब के चेहरों पर असीम शान्ति झलक रही थी। फिर भी राजा ने मघ के गाँव को एक दूत भेजकर जाँच करवाई। जाँच से यह बात स्पष्ट हो गई कि गाँव मघ की सेवा के कारण बहुत सुखी और शील-सम्पन्न हो गया है, आपसी झगड़े मिट गए हैं और सब प्रेम से रहते हैं। अब तो राजा को झूठी बात जानकर अपना स्वार्थ साधनेवाले ग्राम-भोजक पर बहुत क्रोध आया और उसे सूली पर चढ़ाने का हुक्म दे दिया।

लेकिन मघ को यह बात अच्छी नहीं लगी। उसने कहा—"इस ग्राम-भोजक के हमपर बहुत उपकार हैं कि हम आत्म-दर्शन पा सकें और अपने व्रत की परीक्षा दे सकें। ये हमारे मित्र हैं। हमारी प्रार्थना है कि आप इन्हें मुक्त कर दें।"

राजा ने मघ की बात स्वीकार कर ली। मघ की निःस्वार्थ और सच्ची सेवा का जनता पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि सारा राष्ट्र सुधर गया और लोग जन-सेवा करने लगे।

इस समय अपने देश में भी महात्मा गांधीजी मघ जैसा कार्य कर रहे हैं। लोग उनके बारे में तरह-तरह की बातें करते हैं, उन्हें कष्ट देते हैं, फिर भी वे अपना काम करते जा रहे हैं। [illegible]

लिंकन के पिता अच्छे स्थान की खोज में एक प्रांत से दूसरे प्रांत में इधर-उधर भटकता ही रहा। लिंकन अपनी २१ वर्ष की उम्र तक हल जोतने, झाड़ काटने, जमीन खोदने, बोझा ढोने जैसे मेहनत-मजदूरी के काम करता रहा। बाद में वह किसी किराने की दूकान में काम करने लगा। वहाँ उसे पढ़ने का अच्छा मौका मिला। उस समय आज के समान पुस्तकें सुलभ नहीं थीं। वह दूर-दूर से पुस्तकें माँग कर लाता और पढ़ता। वह पुस्तकें यों ही ऊपर-ऊपर से नहीं पढ़ता था। जो कुछ पढ़ता उस पर गहराई से विचार करता। एक बार उसने दूकान के लिए कुछ रद्दी खरीदी। किराने की दूकान में सामान देने के लिए रद्दी की तो खास जरूरत होती है। उस रद्दी में उसे कुछ कानून की पुस्तकें मिल गईं। वह उन्हें पढ़ने लगा। कानून की पुस्तकों में उसे इतनी रुचि हो गई कि उसने निश्चय कर लिया कि वकील बनना चाहिए। पढ़ने में उसने काफी परिश्रम उठाया और अन्त में वकीलों की परीक्षा देकर वह वकील बन गया।

वकील बनने पर लिंकन ने स्प्रिंगफील्ड में वकालत शुरू की। जब वह स्प्रिंगफील्ड में आया तब उसके पास पूँजी के नाम एक थैली थी जिसमें उसकी पुस्तकें और पहनने के कुछ कपड़े थे। उसने जॉन स्टुअर्ट के साझे में वकालत शुरू की। यद्यपि वे [illegible] वकालत करने [illegible] राजनीति [illegible]

इन्हीं दिनों मेरी टॉड से उसका परिचय हुआ और कुछ दिनों बाद उनका सम्बन्ध स्थापित हो गया। लेकिन दोनों के स्वभाव आपस में नहीं मिलते थे। मेरी दिखावा-प्रिय, ईर्ष्यालु और सत्ता-लोलुप थी और लिंकन परिश्रमी, दिखावे से दूर, सादगी-प्रिय था। जब इन दोनों के विवाह का निश्चय हुआ, तिथि निश्चित हो गई और मेरी के घर पर उत्सव मनाया जा रहा था तथा मेहमान एकत्रित थे, तब *लिंकन का पता नहीं था*। विचार तथा स्वभाव की भिन्नता के कारण लिंकन उससे विवाह नहीं करना चाहता था। वह इस विवाह से डरने लगा और आत्महत्या तक का विचार उसने कर लिया। यह सन् १८४० की घटना है। लेकिन दो वर्ष के बाद ऐसा योगायोग आया कि उसका मेरी के साथ ही विवाह हुआ। मेरी के कारण लिंकन की गृहस्थी सुख-शांतिमय न हो सकी। मेरी लिंकन के शांत स्वभाव की कसौटी बन गई। जिस तरह साक्रेटीस के लिए झेंथापि, तुकाराम के लिए जीजाबाई थी वैसे ही लिंकन के लिए मेरी थी। फिर भी लिंकन ने उस के साथ शांति से जीवन-यापन किया। महापुरुषों की विशेषता इसी में रहती है कि वे विपरीत या प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपना कार्य और विकास करते रहते हैं।

लिंकन को अपनी पत्नी के कारण बहुत कुछ दुख सहन करना पड़ा। स्प्रिंग-फील्ड में वकालत के दिनों में तो उसने कष्ट दिया ही, लेकिन अमेरिका का प्रेसीडेंट बनने पर भी वह बड़े-बड़े लोगों के सामने उसका काफी अपमान किया करती। लेकिन लिंकन बहुत सहन-शील था। उसने उससे कभी भी कुछ नहीं कहा। लिंकन की यह खास विशेषता थी कि किसी की गल्ती पर वह कभी भी कुछ

न कहता, लेकिन अच्छा कार्य होने पर बहुत उत्साह दिया करता। उसका यह स्वभाव अंत तक बना रहा। इसी लिए लिंकन के बारे में कहा जाता है कि "वह सबका मित्र था, शत्रु किसी का भी नहीं।"

गुलामी के अत्याचारों को देखकर उसका कोमल हृदय पिघल गया और उसने निश्चय किया कि वह गुलामी को नष्ट करने में पूरा प्रयत्न करेगा। मौका मिलने पर उसने धारा-सभा में गुलामी के विरुद्ध बहुत जोरदार आवाज उठाई। वह कहा करता कि 'यह राष्ट्र आधा गुलाम और आधा स्वतन्त्र कभी नहीं रह सकता।'

सन् १८६० में रिपब्लिकन पार्टी ने उसे प्रेसीडेंट के लिए अपना उम्मीदवार चुना वह प्रेसीडेंट चुन लिया गया। प्रेसीडेंट चुने जाने पर जब वह पद-ग्रहण के लिए राजधानी जाने लगा तब अपनी सौतेली माँ से मिलने गया। उसने कहा, "बेटा, मैं नहीं चाहता कि तुम प्रेसीडेंट बनकर राजधानी जाओ, क्योंकि मुझे डर है कि लोग वहाँ तुम्हारी जान के दुश्मन न बन जावें।" अन्त में वही हुआ। लिंकन जैसे महापुरुष की मृत्यु एक हत्यारे की गोली से हुई।

उसके प्रेसीडेंट बनने के थोड़े दिनों बाद ही उत्तर और दक्षिणवालों में गुलामी के प्रश्न को लेकर गृह-युद्ध छिड़ गया। यह एक भयानक गृह-युद्ध था, जिसमें लाखों लोग मर गए। भाई-भाई में होनेवाली यह लड़ाई बड़ी भयानक थी। गृह-युद्ध के चार वर्ष में लिंकन को जो कष्ट सहना पड़ा, चिन्ता करनी पड़ी, उसका उसके शरीर पर बहुत बुरा परिणाम हुआ, लेकिन वह धीरज से

साथ विरोधियों के बीच काम कर उसने विजय प्राप्त की और गुलामी को नष्ट किया।

दूसरे चुनाव में भी वह प्रेसीडेंट चुना गया। लड़ाई बन्द हो गई। उत्तरवाले विजयी हुए। उत्सव हो रहे थे। उसकी पत्नी ने नाटक देखने का कार्य-क्रम बनाया। वे नाटक देखने गए। वहाँ जॉन विल्कि बूथ नामक व्यक्ति ने गोली चलाकर लिंकन को मार डाला। संसार की एक महान् आत्मा का इस तरह करुण अन्त हुआ। हर महापुरुष की अमरता ऐसी मृत्यु में है। अपने व्यक्तिगत जीवन में लिंकन ने किसी की बुराई नहीं की। लेकिन गुलामी नष्ट करने के कारण उससे कुछ लोग नाराज हो गए थे और इसी लिए उसकी हत्या हुई। जो मौत से नहीं डरते वे ही दुनिया का भला करते हैं। मौत से डरनेवाला अपना भी भला नहीं कर सकता।

लिंकन सचमुच महापुरुष थे। उनके बचपन की एक घटना लिखता हूँ। इससे उनके विशाल हृदय का पता लगता है।

जब उसे पढ़ने का शौक लगा तब वह दूर-दूर से पुस्तकें लाकर पढ़ा करता। एक बार कोई पुस्तक खराब हो गई। इसका उसे बहुत दुख हुआ। पुस्तक के मालिक के पास जाकर उसने सारी बात कह दी। उसने कहा कि, "मेरे पास पैसे नहीं हैं, इसलिए मुझसे पुस्तक की कीमत की मजदूरी करवा लीजिए।" तीन दिन मजदूरी करके उसने नुकसान की पूर्ति कर दी।

बेटा, जिन्हें अपनी जिम्मेदारी का खयाल होता है, वे ही आगे चलकर बड़े बनते हैं। बड़े होनेपर तुम अमेज और अमरीकन

ों के लिये मुझे अब्राहम लिंकन के विविध चरित्र और संस्मरण
। उनसे तुम्हें बहुत बातें सीखने को मिलेंगी।

बड़े होनेपर भी उनमें अहंकार नहीं था। सेवा करने में
बड़ा आनन्द आता था। वे एक साधारण कुल में पैदा
और अपने सदाचार और सद्विचार से अमेरिका के पिता
न। सदाचार और सद्विचार से ही जीवन बनता है।

—रिषभदास के प्यार

: ११ :

महात्मा टाल्स्टाय

प्यारे राजा बेटा,

आज मैं तुम्हें महात्मा टाल्स्टाय की कहानी लिख रहा हूँ इनकी कहानियाँ तुम चाव से सुनना चाहते हो न ! मूर्खराज, प्रेम में भगवान्, भगवान् सचाई देखता है, लेकिन धीरज रखो, धर्म-पुत्र आदि बहुत अच्छी कहानियाँ हैं। टाल्स्टाय बहुत बड़े विद्वान् और महात्मा हो गए हैं। उनका चरित्र तुम जैसे बालकों को जरूर पढ़ना चाहिए।

टाल्स्टाय का पूरा नाम काउण्ट लियो टाल्स्टाय था। इनका जन्म रूस देश में टूला के पास यासनाया पोलयाना ग्राम में ता० २८ अगस्त सन् १८२८ को हुआ था। उनके पिता का नाम काउण्ट निकोलस टाल्स्टाय और माता का प्रिंसेज मेरी वाल्कन्स्की था। टाल्स्टाय के माता-पिता उच्च घराने के थे और इनका वंश रूस के इतिहास में प्रसिद्ध है। 'काउण्ट' टाल्स्टाय की वंश की उपाधि थी। केवल १४ महीने की अवस्थामें ही टाल्स्टाय की माँ का देहान्त हो गया और ९ वर्ष की उम्र में पिता भी चल बसे। टाल्स्टाय: चार भाई थे। इनके एक भाई का नाम निकोलस था। इन दोनों के विचार एक-से थे। ये जमींदार घराने के बालक थे। उस समय जमींदार लोग अपने गुलामों के साथ बहुत ही निर्दयता

हो गई। वहाँ से वे पीटर्सबर्ग चले गए। सन् १८५७ में वे यूरोप यात्रा पर निकल पड़े। पेरिस में उन्होंने एक आदमी को फाँसी पर लटकाते हुए देखा। इस हृदय-विदारक दृश्य से उन्हें बहुत धक्का लगा और वे प्राण-दण्ड की प्रथा के विरोधी हो गए। १८६० ईस्वी में उनके बड़े भाई का देहान्त हो गया।

इस तरह हिंसा, युद्ध और अत्याचार तथा दुर्व्यसनों की बुराइयों से दूर हटकर वे अब साहित्यिक क्षेत्र में आ गए। उन्होंने बहुत ही अच्छी-अच्छी पुस्तकें लिखीं। उनका पहला उपन्यास 'बचपन' था। टाल्स्टाय के अक्षर साफ-सुथरे नहीं होते थे। अरे यहाँ बापू के अक्षर भी कहाँ अच्छे होते हैं! लेकिन टाल्स्टाय की स्त्री के अक्षर बहुत साफ होते थे। वह पढ़ी-लिखी और उच्च घराने की महिला थी। प्रेस में देने के लिए रचनाओं की कापी उनकी स्त्री ही किया करती थी। उनकी स्त्री का नाम सोफिया बेहर्स था। इनका विवाह सन् १८६२ में हुआ था। साहित्यिक क्षेत्र में आने पर उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं। उनकी पुस्तकों की धूम जर्मनी, फ्रांस, इंगलैंड में मच गई।

सन् १८६१ में रूस के किसान गुलामी से मुक्त हुए थे। उनकी शिक्षा के लिए टाल्स्टाय ने स्कूल खोल दिए। प्रारंभिक शिक्षा कैसे दी जाय, इसका अध्ययन करने के लिए वे फ्रांस, जर्मनी और इंगलैंड गए थे। लेकिन उनकी स्कूलें चल नहीं सकीं—क्यों कि सरकारी अधिकारी यह आज़ादी पसंद नहीं करते थे। टाल्स्टायने तो अपनी स्कूलों में विद्यार्थियों को पूरी स्वतन्त्रता दे रखी थी।

इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिये उन्होंने तत्त्व-ज्ञानियों के ग्रन्थ पढ़े, लेकिन सन्तोष नहीं हुआ। अन्तमें वे धर्मकी ओर मुड़े। श्रद्धासे गिरजा-घर में जाने लगे। बाइबिल पढ़ा करते। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण थी। जब उन्हें बुद्धि से समाधान नहीं मिला तो वे श्रद्धा की भूमिका पर आ गए। लेकिन यह अन्ध-श्रद्धा नहीं थी। वे तो जिज्ञासु या उपासक थे। लोगों द्वारा किया जानेवाला बाइबिल का अर्थ उन्हें ठीक नहीं लगा। वे तो स्वयं के जीवन में बाइबिल को उतारना चाहते थे— ईसा के समान निर्मल, पवित्र बनना चाहते थे। सच तो यह है कि उन्हें अपना जीवन सुधारना था, अपनी बुराइयाँ दूर करनी थीं। गहराई से सोचने और देखने पर उन्हें समाज में और शासन में भी बुराइयाँ नजर आईं। जब उन्होंने बुराइयों के बारे में कलम चलाई तो पादरियों (धर्म-गुरुओं) और सरकारी अधिकारियों को अच्छा नहीं लगा। उन लोगोंने इस महात्मा को धर्म से बहिष्कृत कर दिया।

दिनोंदिन उन्हें धन से, धन की सहायता से घृणा होने लगी। सारे अनर्थों की जड़ धन है। धन मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद की दीवार खड़ी करता है। वे अब स्वयं परिश्रम करने लगे। सादा जीवन बिताने लगे। लेकिन उनकी पत्नी को ये बातें अच्छी नहीं लगीं। वह पढ़ी-लिखी तो थी, लेकिन वह त्याग और श्रम की महत्ता को समझ नहीं सकी थी। वह समझती थी कि धन सुखों का साधन है। और टाल्स्टाय तो सारी सम्पत्ति बाँट देना चाहते थे। भिन्न विचारों के कारण पति-पत्नी में कलह होने लगी। आखिर यह भेद यहाँ तक बढ़ गया कि एक बार तो उसने सरकार में दरख्वास्त दे दी कि उसका पति पागल हो गया है और अपनी

संस्कार-क्रिया उसी वृक्ष के पास की गई जहाँ बचपन में वि[illegible] बन्धुत्व की स्मृति में एक पौधा रोपा गया था। उनकी इच्छा यही थी कि उनकी समाधि वहीं बने।

धर्म-गुरुओं ने उनकी मृत्यु के बाद भी शत्रुता नहीं छोड़ी धर्म-गुरुओं ने दाह-संस्कार की प्रार्थना नहीं की।

बापू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उनके जीवन [illegible] श्रीमद्‌राजचन्द्र, रस्किन तथा टालस्टाय—इन तीन व्यक्तियों [illegible] बहुत असर हुआ है। इस पर से भी सोचा जा सकता है [illegible] टालस्टाय कितने महान् विचारक थे। स्टीफन ज्वाइग नामक [illegible] बहुत बड़े और प्रसिद्ध लेखक ने भी टालस्टाय पर एक पुस्तक लिखी [illegible]

टालस्टाय वास्तव में गरीबों के हितैषी थे। वे सच्चे धर्मा[illegible] थे। वे परिश्रम में विश्वास रखते थे। वे मानते थे कि श्रम और [illegible] से ही शोषण रुक सकता है, मनुष्य स्वावलम्बी बन सकता है। [illegible] तक आदमी अपनी जरूरत की चीज़ों के लिए खुद परिश्रम न[illegible] करेगा तब तक अमीर-गरीब का भेद नहीं मिट सकता [illegible] न शोषण रुक सकता है। शोषण के रुके बिना अत्याचार भी [illegible] नहीं सकते। और केवल धन की मदद से भी मजदूरी की [illegible] सुधार नहीं हो सकता। मजदूरी और श्रम ही सच्चा धर्म है।

टालस्टाय एक बहुत बड़े विचारक और लेखक थे। उन्हों[illegible] लगभग ५० पुस्तकें लिखी हैं, जिन में उपन्यास, कहानियाँ, निब[illegible] आदि हैं। बड़े होने पर उनकी रचनाएँ अवश्य पढ़ना।

—शिवदास के प्या[illegible]

संस्कार-क्रिया उसी वृक्ष के पास की गई जहाँ बचपन में विद बन्धुत्व की स्मृति में एक पौधा रोपा गया था। उनकी इच्छा यही थी कि उनकी समाधि वहीं बने।

धर्म-गुरुओंने उनकी मृत्यु के बाद भी शत्रुता नहीं छोड़ी धर्म-गुरुओं ने दाह-संस्कार की प्रार्थना नहीं की।

बापूने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उनके जीवन श्रीमद्राजचन्द्र, रस्किन तथा टाल्सटाय—इन तीन व्यक्तियों बहुत असर हुआ है। इस पर से भी सोचा जा सकता है टाल्सटाय कितने महान् विचारक थे। स्टीफन ज्वाइग नामक बहुत बड़े और प्रसिद्ध लेखक ने भी टाल्सटाय पर एक पुस्तक लिखी।

टाल्सटाय वास्तव में गरीबों के हितैषी थे। वे सच्चे धर्मा थे। वे परिश्रम में विश्वास रखते थे। वे मानते थे कि श्रम और से ही शोषण रुक सकता है, मनुष्य स्वावलम्बी बन सकता है। ज तक आदमी अपनी जरूरत की चीजों के लिए खुद परिश्रम न करेगा तब तक अमीर-गरीब का भेद नहीं मिट सकता और न शोषण रुक सकता है। शोषण के रुके बिना अत्याचार भी मि नहीं सकते। और केवल धन की मदद से भी मजदूरी की अ प्रकार नहीं हो सकता। मजदूरी और श्रम ही सच्चा धर्म है।

टाल्सटाय एक बहुत बड़े विचारक और लेखक थे। उन्हों लगभग ५० पुस्तकें लिखी हैं, जिन में उपन्यास, कहानियाँ, निबं आदि हैं। बड़े होने पर उनकी रचनाएँ अवश्य पढ़ना।

—गिमदाग के प्या

संस्कार-क्रिया उसी वृक्ष के पास की गई जहाँ बचपन में वि
बन्धुत्व की स्मृति में एक पौधा रोपा गया था। उनकी इच्छा
यही थी कि उनकी समाधि वहीं बने।

धर्म-गुरुओंने उनकी मृत्यु के बाद भी शत्रुता नहीं छों
धर्म-गुरुओं ने दाह-संस्कार की प्रार्थना नहीं की।

बापूने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उनके जीवन
श्रीमद्राजचन्द्र, रस्किन तथा टाल्स्टाय—इन तीन व्यक्तियों
बहुत असर हुआ है। इस पर से भी सोचा जा सकता है
टाल्स्टाय कितने महान् विचारक थे। स्टीफन ज्वाइग नामक
बहुत बड़े और प्रसिद्ध लेखक ने भी टाल्स्टाय पर एक पुस्तक लिखी

टाल्स्टाय वास्तव में गरीबों के हितैषी थे। वे सच्चे धर्मा
थे। वे परिश्रम में विश्वास रखते थे। वे मानते थे कि श्रम और स
से ही शोषण रुक सकता है, मनुष्य स्वावलम्बी बन सकता है। ज
तक आदमी अपनी जरूरत की चीजों के लिए खुद परिश्रम नं
करेगा तब तक अमीर-गरीब का भेद नहीं मिट सकता अ
न शोषण रुक सकता है। शोषण के रुके बिना अत्याचार भी रु
नहीं सकते। और केवल धन की मदद से भी मजदूरी की ओ
झुकाव नहीं हो सकता। मजदूरी और श्रम ही सच्चा धर्म है।

टाल्स्टाय एक बहुत बड़े विचारक और लेखक थे। उन्हों
लगभग ५० पुस्तकें लिखी हैं, जिन में उपन्यास, कहानियाँ, निबं
आदि हैं। बड़े होने पर उनकी रचनाएँ अवश्य पढ़ना।

—रिषभदास के प्या